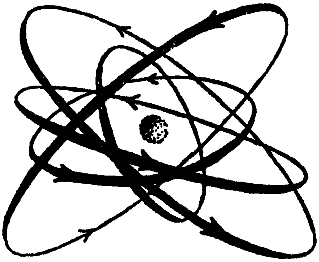
ज्ञान-विज्ञान-१

एटम की कहानी

की ज्ञानपूर्ण कहानी सुगम भाषा में

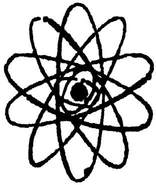


राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

All About the Atom का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक : विराज एम० ए०

मूल्य	:	दो रुपये (२.००)
प्रथम संस्करण	:	मार्च, १९५८
प्रकाशक	:	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	:	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली



विषय-सूची

अध्याय | १

सब चीजें किस वस्तु से बनी हैं ?

यदि किसी प्रकार गोपालकृष्ण गोखले हमारी आज की बातचीत सुन सकते होते, तो उन्हें बहुत-सी बातें ऐसी सुनाई पड़तीं, जो उनकी समझ में न आतीं। पिछले सौ वर्षों में दुनियाँ बहुत बदल गयी है। अतीत काल का कोई भी व्यक्ति आजकल की उन अनेक वस्तुओं को कठिनाई से ही समझ पायेगा, जिनको हम यह मान लेते हैं कि वे तो सबको मालूम ही हैं। ऐसे बहुत-से शब्द, जिनका प्रयोग हम दिन-रात करते हैं, उसे बिलकुल नये जान पड़ेंगे। फिर भी, इस प्रकार के शब्द, जैसे उदाहरण के लिए 'शब्द सीमारोक', 'परमाणु ऊर्जा', 'राडार', 'स्टैप्टोमाइसीन' इत्यादि हमारे समाचार-पत्रों में प्रतिदिन प्रयोग में आते हैं। अतीत का वह यात्री इन शब्दों की ध्वनि से शायद इतना तो समझ ले कि ये कुछ वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द हैं; पर इससे अधिक कुछ नहीं समझ सकेगा।

आज हमें मालूम है कि विज्ञान का हमारे जीवन पर कितना अधिक प्रभाव है। बहुत समय तक लगन के साथ काम करते रहने का फल यह हुआ है कि अब लोगों के पास पहले की अपेक्षा कहीं अच्छे मकान और वस्त्र हैं; रोगों का इलाज करने के लिए बढ़िया दवाइयाँ हैं; पहले की अपेक्षा अधिक पौष्टिक और स्वास्थ्यप्रद भोजन है; मनोरंजन के लिए नये-

नये साधन निकल आये हैं और आवागमन के लिए बहुत वेगवान वाहन तैयार हो गये हैं।

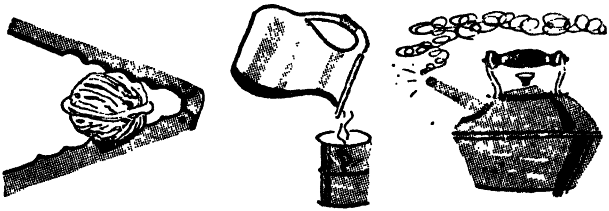
विज्ञान का यह प्रसार सचमुच बिल्कुल नयी चीज है। शायद कुछ न कुछ ऐसे विचारक बहुत पहले से, सदा से होते रहे हैं, जिनकी रुचि अपने आसपास की दुनियाँ का अध्ययन करने की ओर थी। परन्तु उनके अतिरिक्त शायद ही और किसीने उनके विचारों और उनकी गतिविधियों की ओर विशेष ध्यान दिया हो। बिलकुल शुरू के समय से लेकर लोगों में यह जानने का कुतूहल था कि उनके आस-पड़ौस में पायी जाने वाली चीजें क्या हैं; वे कहाँ से आई हैं और कैसे बनी हैं, इत्यादि। वे लोग अपने पैरों के नीचे पड़ी चट्टानों को, जंगल में खड़े पेड़ों की लकड़ी को, समुद्र के पानी को और आकाश में उड़ते हुए बादलों को बड़े आश्चर्य से देखते थे, और उनके बारे में सोचते थे।

बाद में जब और बहुत-सी नयी-नयी चीजें मिलीं और लोग उन चीजों से परिचित हो गये, तब उन चीजों को अलग-अलग वर्गों में बाँट दिया गया। कुछ वस्तुएँ, जैसे पत्थर, लोहा, इत्यादि ठोस कहलाईं। कुछ अन्य वस्तुएँ, जो पानी या तेल की तरह थीं, द्रव या तरल कहलाईं। कुछ अन्य वस्तुएँ गैस कहलाईं, जो हवा या भाप की तरह थीं।

किसी ठोस चीज को देखो। वह चीज अपने किसी भी निश्चित आकार और आकृति को बनाये रखने के लिए भरपूर कोशिश करती है; जैसे ईंट, लकड़ी या पैसा। द्रव्य या तरल पदार्थों का भी एक निश्चित आकार होता है और किसी भी

द्रव पदार्थ को दबाकर उसे पहले की अपेक्षा कम स्थान में रख पाना लगभग असम्भव है। परन्तु द्रव पदार्थ की यह विशेषता होती है, जो ठोस पदार्थों में नहीं पाई जाती, कि वह बहता है और उसे जिस भी बर्तन में डाल दिया जाय, उसी के अनुसार वह अपनी आकृति बना लेता है।

परन्तु गैस का न कोई आकार होता है और न कोई आकृति ही होती है। यदि थोड़ी-सी हवा या कोई दूसरी गैस एक बोतल में छोड़ी जाय, तो वह सारी बोतल में समान रूप से फैल जायेगी, चाहे बोतल में बहुत अधिक गैस भरी जाय, चाहे बिल्कुल थोड़ी। बोतल में छोड़ी जाते ही, वह सब दिशाओं में तब तक फैलती जायेगी, जब तक वह बोतल के काँच से टकराकर रुक न जाय। जैसे गिलास में भरे हुए पानी का एक निश्चित तल (सतह) बना रहता है, वैसा किसी गैस का नहीं होता।



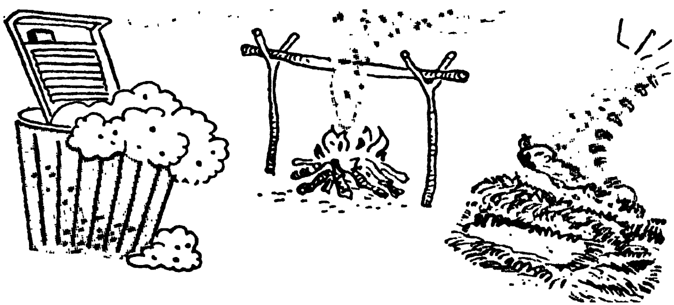
ठोस द्रव गैस

सब चीजों को १. ठोस २. द्रव और ३. गैस इस तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है।

कई चीजों को तुमने इनमें से एक से अधिक रूपों में देखा होगा। शायद इसका सबसे अच्छा उदाहरण पानी है। जो पानी

तुम पीते हो वह द्रव या तरल रूप है, किन्तु बर्फ पानी का ठोस रूप है। पानी के ऊपर सदा कुछ न कुछ भाप उठती रहती है, वह पानी का गैस रूप है। यदि किसी गिलास में बर्फ जैसा ठंडा पानी भर दिया जाय तो उस गिलास के चारों ओर धुंध-सी जम जायेगी। यह धुंध पानी की भाप के कारण जमती है। शुरू में यह भाप हवा में थी, परन्तु जब वह भाप ठंडे गिलास के साथ छुई, वह घनी होकर द्रव्य पानी के रूप में जम गयी। उबलते हुए पानी से निकलने वाली वाष्प भी पानी की भाप ही है। वाष्प भी वायु की तरह अदृश्य गैस है और यह हमें तब तक दिखाई नहीं पड़ती, जब तक कि ठंडी होकर जमकर धुंध के-से बादल का रूप धारण नहीं कर लेती। इस ठंडे जमे हुए रूप में इसे वाष्प न कहकर 'धुंध' या 'कुहरा' कहना अधिक उचित होगा।

और भी कई चीजें इन तीनों रूपों में दिखाई पड़ सकती



ये चीजें ठोसों, द्रवों और गैसों के मिश्रण हैं।

हैं। किसी चीज़ को ठंडा या गर्म करने से उसके रूप में परिवर्तन हो जाता है। मामूली तापमान पर लोहा ठोस रहता है, परन्तु लोहे के कारखाने में जब लोहे को २७०० तापांश तक गर्म किया जाता है तो लोहा द्रव बन जाता है। उस समय इस लोहे को चाहे जिस आकृति में ढाला जा सकता है। ठंडा होने पर लोहा फिर ठोस बन जाता है और उस दशा में अपनी आकृति को ज्यों का त्यों बनाये रखता है। सूर्य में, जहाँ का तापमान १०००० तापांश से भी अधिक है, लोहा केवल गैस रूप में ही रह सकता है। रसायनवेत्ता (कैमिस्ट) किसी भी चीज के इन रूपों में होने वाले परिवर्तन की ओर बहुत कम ध्यान देता है। उसके लिए लोहा लोहा है और पानी पानी है, चाहे फिर वह गैस रूप में हो, चाहे द्रव रूप में और चाहे ठोस रूप में।

अपने आसपास की वस्तुओं पर नजर डालो और यह जाँचने का यत्न करो कि उनमें से कौन-सी वस्तु किस रूप में है। कुछ वस्तुएँ ऐसी भी होंगी, जिनके रूप के बारे में कुछ सन्देह होगा। उदाहरण के लिए लाख, या जमे हुए कोलतार का टुकड़ा देखने में किसी ठोस वस्तु की तरह कड़ा और भुरभुरा प्रतीत होता है। यदि उसके ऊपर हथौड़ी से चोट की जाये, या उसे जोर से जमीन पर पटका जाय, तो वह शीशे की तरह चूर-चूर हो जाता है। परन्तु यदि तुम लाख या कोलतार के जमे हुए सूखे टुकड़े को किसी टीन के बर्तन में रख दो और उसे कुछ महीने पड़ा रहने दो, तो तुम देखोगे कि वह बहकर बर्तन की सारी तली पर फैल गया है। उस समय वह द्रव या तरल-सा दीख पड़ता है। बहुत समय तक पड़े रहने के बाद

शीशा और दूसरी कई ठोस दीख पड़ने वाली चीजें भी इसी तरह बहकर द्रव बन जाती हैं।

और झाग, धुआँ, कीचड़ और कुहरा क्या है? ये सब मिश्रण हैं। धुआँ वायु में उड़ते हुए छोटे-छोटे ठोस कणों से मिलकर बनता है और कीचड़ पानी में तैरते हुए छोटे-छोटे ठोस कणों से मिलकर बनती है। इस पुस्तक में आगे चलकर आप देखेंगे कि विज्ञान ने इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए इस बात को और भी अधिक पक्के तौर पर सुलझा दिया है कि सब चीजें किस वस्तु से बनी हुई हैं। विज्ञानवेत्ताओं को जब सब चीजों का सामान्य रूप से जिक्र करना होता है तो वे उनके लिए एक शब्द 'पदार्थ' का प्रयोग करते हैं।

अध्याय | २

ऊर्जा वस्तुओं को गति देती है

बहुत जल्दी ही आप इस बात को समझ जायेंगे कि हमारे आसपास अलग-अलग रूपों में विद्यमान पदार्थ के अलावा कुछ दूसरी चीजें भी हैं। अंगीठी के ऊपर रखा हुआ गर्म बर्तन एक अलग चीज है और वही बर्तन ठंडा हो, तो वह कुछ अलग चीज है। विज्ञानवेत्ता कहेगा कि गर्म बर्तन में ताप भरा हुआ है। फ्लोरोसैन्ट लैम्प ठोस धातु की तारों और शीशे से—याद रखिये कि शीशा असल में द्रव पदार्थ है—बना होता है। उसके अन्दर गैसों का एक मिश्रण भरा होता है। इसके अतिरिक्त किसी रूप में बिजली भी इसमें महत्वपूर्ण काम करती है और इस लैम्प से एक ऐसी वस्तु बाहर निकलती है, जिसे हम प्रकाश कहते हैं। ताप, बिजली और प्रकाश जैसी वस्तुएँ पदार्थ नहीं हैं; क्योंकि न तो वे अलग-अलग रूपों में ही पाई जाती हैं और न वे स्थान ही घेरती हैं। इन चीजों को न तो तोला जा सकता है, और न दूध या चीनी की तरह डब्बों में ही बन्द किया जा सकता है। ये सब की सब उसी वस्तु के अलग-अलग प्रकार हैं जिसे 'ऊर्जा' कहा जाता है।

ऊर्जा वह वस्तु है, जो पदार्थ में परिवर्तन कर देती है। ताप ऊर्जा पानी को, जैसा कि तुम भली भाँति जानते हो, ठोस रूप से द्रव रूप में और द्रव रूप से गैस रूप में बदल सकती

है। प्रकाश ऊर्जा तुम्हारे कोट के रंग को फीका कर सकती है या तुम्हारे कैमरे की फिल्म पर एक प्रतिमा अंकित कर सकती है। बिजली ऊर्जा घर साफ करने की मशीन को चला सकती है, तुम्हारी आवाज को तार द्वारा बहुत दूर तक ले जा सकती है या हजारों मील दूर होती हुई घटनाओं के चित्र तुम्हारे पास तक पहुँचा सकती है।

ऊर्जा के और भी कई प्रकार हैं। कोयले या तेल के अन्दर विद्यमान रासायनिक ऊर्जा अंगीठियों पर खाना पकाने और रेलगाड़ियों को चलाने के काम आती है। भोजन में विद्यमान रासायनिक ऊर्जा तुम्हारे शरीर को, जो एक तरह का इंजिन ही है, चलाती है। मोटे तौर पर परमाणु शक्ति का कार्य भी हम सबको मालूम ही है।

ऊर्जा का सबसे अधिक परिचित प्रकार शायद वह है, जो चीजों को गति देता है या उनकी गति में कोई परिवर्तन करता है। यह प्रकार यान्त्रिक ऊर्जा कहलाता है। हर एक मशीन, चाहे वह किसी भी ढंग की क्यों न हो, यान्त्रिक ऊर्जा को किसी न किसी उपयोगी काम में लगाती है। यह मशीन एक बिलकुल सीधा-साधा हाथ का औजार भी हो सकती है, जैसे कि हथौड़ा, या फिर वह मशीन छापेखाने की मशीन या रेल के इंजिन की तरह बहुत पेचीदा भी हो सकती है।

यदि तुम अपना हाथ मेज पर रखो और उसके बाद एक हथौड़ी के सिरे को सावधानी के साथ धीरे से अपने अंगूठे पर ला रखो, तो कोई खास बात नहीं होती; परन्तु यदि कभी ऐसा हो कि किसी कील को गाड़ते हुए असावधानी के कारण वही

हथौड़ा तुम्हारे अंगूठे पर आ लगे, तो खासी चोट लगेगी और काफी दर्द होगा। तेजी से गति करते हुए हथौड़े का सिरा शान्त रखे हुए हथौड़े के सिरे से बिलकुल भिन्न वस्तु है। इन दोनों में जो अन्तर है, वह ऊर्जा के कारण है। किसी भी गति करती हुई वस्तु में विद्यमान यान्त्रिक ऊर्जा गतिक ऊर्जा (किनैटिक एनर्जी) कहलाती है। टूटता हुआ पहाड़, नदी की बाढ़ का पानी या आकाश में उठती हुई आँधी इसीलिए विनाशकारी होती है, क्योंकि उनमें बहुत बड़ी मात्रा में गतिक ऊर्जा भरी होती है।

विज्ञानवेत्ताओं ने गतिक ऊर्जा को नापने का उपाय खोज निकाला है। शायद तुम सोचते होगे कि ४० मील प्रति घंटे



२० मील प्रति घंटा (गतिक ऊर्जा कम है) ४० मील प्रति घटा (गतिक ऊर्जा ४ गुनी है) ६० मील प्रति घंटा (गतिक ऊर्जा ९ गुनी है)

मोटर जितनी अधिक तेज दौड़ती है, उसमें गतिक ऊर्जा उतनी ही अधिक होती है।

को चाल से दौड़ती हुई मोटर में २० मील प्रति घंटे की चाल से दौड़ती हुई मोटर की अपेक्षा दुगुनी गतिक ऊर्जा होती होगी। पर वस्तुतः जो मोटर ४० मील प्रति घंटे की चाल से दौड़ रही है, उसमें २० मील प्रति घंटे की चाल से दौड़ने वाली मोटर की अपेक्षा २×२ अर्थात् ४ गुनी अधिक ऊर्जा होती है। यदि वही मोटर ६० मील प्रति घंटे की चाल से दौड़ने लगे तो उसमें ३×३ अर्थात् ९ गुनी अधिक ऊर्जा हो जायेगी और इसी तरह चाल बढ़ने के साथ-साथ उनकी ऊर्जा भी बढ़ती जायेगी। ज्यों-ज्यों वेग बढ़ता है, त्यों-त्यों ऊर्जा भी बहुत तेजी से बढ़ती जाती है।

इससे तुम समझ सकते हो कि तीव्र वेग से दौड़ती हुई गाड़ियों की टक्कर इतनी विनाशकारी क्यों होती है।

वस्तुओं को हिलाने-डुलाने के लिए—उनमें गतिक ऊर्जा भरने के लिए—तुम्हें कुछ न कुछ काम करना पड़ता है। प्राय: यह काम तुम अपने शरीर की मांस-पेसियों द्वारा करते हो। किसी ठेलागाड़ी को चलाने के लिए उसे धक्का देना होता है, या किसी पत्थर को फेंकना होता है या फुटबाल को ठोकर मारनी होती है, तभी उनमें गति आती है। किसी भी वस्तु को गति में लाने के लिए तुम्हें यह कीमत चुकानी पड़ती है ; परन्तु जब एक बार यह श्रम कर दिया जाता है, तो वह उस गति करती हुई वस्तु में गतिक ऊर्जा के रूप में संचित रहता है, चाहे वह सड़क पर लुढ़कते हुए ठेले में हो, चाहे आकाश में उछलते हुए पत्थर या फुटबाल में हो।

किसी ठेलागाड़ी को जोर से एक ही बार धक्का देने के बजाय तुम यह भी कर सकते हो कि उसे सारे रास्ते भर धीरे-धीरे घसीटते हुए ले जाओ। यदि तुम इस प्रकार करो तो उस ठेलगाड़ी में शुरू में ही कोई गतिक ऊर्जा जमा नहीं हो पायेगी। इसके बजाय तुम्हें सारे रास्ते उस ठेलागाड़ी को चलाते रहने के लिए आवश्यक ऊर्जा देते रहना होगा और उसके लिए श्रम करना होगा।

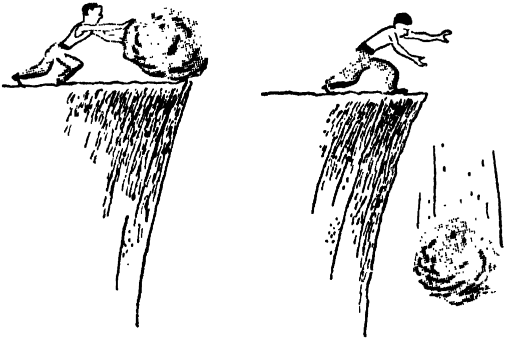
परन्तु ठेलागाड़ी को दूर तक लेजाने का एक और तरीका भी है। कल्पना करो कि थोड़ी-सी दूर पर एक ऊँचा टीला है। तुम ठेलागाड़ी को ढकेलते हुए इस टीले के ऊपर तक ले जाते हो और फिर वहाँ से उसे नीचे की ओर लुढ़का देते हो, जिससे

वह अभीष्ट स्थान तक पहुँच जाय। सोचकर देखो; यहाँ पर इस बार भी तुम्हें ठेलागाड़ी को टीले के ऊपर तक धकेल कर ले जाने के लिए श्रम करना पड़ा। ऊर्जा की कीमत सदा किसी न किसी रूप में चुकायी ही जानी चाहिये—प्रकृति इस बात का अच्छी तरह ध्यान रखती है।

कल्पना करो कि तुम ठेलागाड़ी को धकेलकर टीले के ऊपर तक तो ले जाते हो, किन्तु वहाँ से उसे तुरन्त नीचे नहीं लुढ़का देते। इसके बजाय तुम उसे टीले के ऊपर ही ब्रेक लगा-कर खड़ा कर देते हो। उसके बाद तुम्हारी जब इच्छा हो, तुम काफी देर बाद वहाँ जा सकते हो और ब्रेक को हटाकर ठेला-गाड़ी को लुढकाकर उसपर बैठ कर आनन्द से सवारी करते हुए नीचे आ सकते हो; क्योंकि इसकी कीमत तुम पहले अपने शारीरिक श्रम से चुका चुके हो। तुम्हारा श्रम या ऊर्जा अवश्य ही उस सारे समय उस ठेलागाड़ी में जमा रही होगी, जिस समय वह टीले के ऊपर खड़ी रही।

निश्चल वस्तुओं में इस प्रकार की संचित ऊर्जा प्रसुप्त ऊर्जा कहलाती है। किसी भी ऊपर उठाये हुए बोझ की ऊर्जा—टीले के ऊपर खड़ी हुई ठेलागाड़ी, ऊपर उठाया हुआ हथौड़ा, किसी खड्ड के किनारे रखा हुआ पत्थर, या जल-प्रपात की चोटी पर के पानी में— प्रसुप्त ऊर्जा होती है। यदि खड्ड के ऊपर रखा हुआ पत्थर नीचे को गिर पड़े, तो ज्यों-ज्यों वह तेज और तेज चाल से नीचे की ओर गिरता जायगा, त्यों-त्यों उसकी प्रसुप्त ऊर्जा गतिक ऊर्जा के रूप में बदलती जायगी। ज्योंही वह पत्थर आकर जमीन से टकरायेगा, त्योंही यह गतिक

ऊर्जा उस पत्थर को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देने, उसे जमीन के अन्दर धँसा देने और वायु में शब्द की तरंगें उठाने में व्यय हो जायगी।



पत्थर की संचित ऊर्जा गतिक ऊर्जा बन जाती है।

प्रसुप्त ऊर्जा के ऐसे दूसरे भी कई रूप हैं, जिनमें ऊपर उठाये हुए बोझ का प्रयोग नहीं होता। अपनी घड़ी में चाबी देने के लिए तुम जो श्रम करते हो, उसका क्या होता है? वह श्रम प्रसुप्त ऊर्जा के रूप में घड़ी की स्प्रिंग में संचित हो जाता है और इस बात की प्रतीक्षा करता रहता है कि कब घड़ी को चलाने के काम में उसका उपयोग हो जाय। डायनामाइट की बत्ती देखने में मामूली लकड़ी के टुकड़े जैसी जान पड़ती है; पर असल में दोनों में बहुत अन्तर है। अगर कभी गलती से तुम डायनामाइट की बत्ती पर जोर की चोट करो और तब तुम्हें इस अन्तर का पता चले, तो बहुत ही बुरा होगा। डायनामाइट के अन्दर प्रसुप्त रासायनिक ऊर्जा बहुत बड़ी मात्रा में विद्यमान होती है। लकड़ी के टुकड़े में भी इस प्रकार का रासाय-

निक ऊर्जा होती है, पर बहुत थोड़ी मात्रा में। लकड़ी के टुकड़े से इस ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए हमें उस लकड़ी के टुकड़े को जलाना होगा। तब उसमें से ताप निकलेगा, जो ऊर्जा का ही एक रूप है।

जब तुम किसी वस्तु को यान्त्रिक ऊर्जा देने के लिए श्रम करते हो, तब, जब सब काम समाप्त हो चुकता है, ऐसा प्रतीत होता है कि मूल ऊर्जा लुप्त हो गयी है। किसी ठेला-गाड़ी को यदि जोर से धक्का दिया जाय, तो वह कुछ दूर तक लुढ़कती जाती है, पर अन्त में खड़ी हो जाती है। किसी झूले को अपनी ओर खींचकर फिर उसे झटका दे दो; तुम देखोगे कि वस झूला कई बार आगे और पीछे की ओर झूलता रहता है। परन्तु उसका हर बार आगे और पीछे जाना कम और कम होता जाता है और थोड़ी ही देर बाद वह झूला रुककर फिर स्थिर हो जाता है। ऐसे मामलों में ऊर्जा का क्या हो जाता है? उत्तर यह है कि ऊर्जा वस्तुतः लुप्त नहीं हो जाती, अपितु ताप में बदल जाती है, जो ऊर्जा का ही एक और रूप है। जब ठेलागाड़ी दौड़ चुकती है, तब उसके पहिये उसकी अपेक्षा कुछ अधिक गर्म होते हैं, जितने वे दौड़ने से पहले थे। यदि तुम्हारे पास कोई बहुत ही सूक्ष्म तापमापक अर्थात् थर्मा-मीटर हो तो उसके द्वारा तुम यह पता चला सकते हो कि झूले के झूलने के बाद उसके आसपास की हवा भी बहुत मामूली-सी गर्म ही उठती है।

लोगों को यह बात हमेशा से मालूम नहीं थी कि यान्त्रिक ऊर्जा का व्यय करने से ताप उत्पन्न हो सकता है। सच तो यह

है कि लगभग १०० साल पहले भी विज्ञानवेत्ता यह मानते थे कि ताप एक प्रकार का भाररहित बहने वाला पदार्थ है, जो एक स्थान से बहकर दूसरे स्थान तक जा सकता है। जब किसी तपाये हुए पत्थर को पानी की बाल्टी में डुबाया जाय, तो उनका विचार था कि, ताप नामक बहने वाला पदार्थ पत्थर में से निकलकर तब तक पानी में जाता रहता है जब तक कि दोनों का तापमान बराबर न हो जाय।

बेंजामिन टामसन पहला व्यक्ति था, जिसने यान्त्रिक ऊर्जा ग्रौर ताप के बीच का सम्बन्ध पहले पहल स्पष्ट किया। बेंजामिन टामसन एक ग्रमेरिकन था ग्रौर ग्रमरीका के स्वाधीनता-संग्राम के दिनों में जीवित था। यह साहसी स्वभाव का व्यक्ति बावेरिया के राजा का वैज्ञानिक सलाहकार था। उसका एक काम यह भी था कि वह उस शस्त्रागार की देख-रेख करता रहे, जहाँ बवेरिया की सेना के लिए तोपें तथा दूसरे हथियार बनाये जाते थे। इस शस्त्रागार में तोपें बनाने के लिए पीतल के मोटे-मोटे बेलन जैसे टुकड़ों को ग्रन्दर से रेत कर खोखला किया जाता था। उन दिनों बिजली की मशीनें तो दूर, काम में ग्राने लायक भाप के इंजिन भी नहीं थे। इसलिए इन पीतल के गोलों को खोखला करने वाली मशीन को घोड़े द्वारा चलाया जाता था, जो बहुत कुछ उसी तरह की होती थी, जैसे कि ग्राजकल रहट होता है।

इससे पहले भी लोगों ने बहुत बार तोपों को बनते हुए देखा था। उनमें से बहुत-से लोगों का ध्यान इस ग्रोर गया होगा कि चलते समय पीतल को खोखला करने वाली मशीन ग्रौर

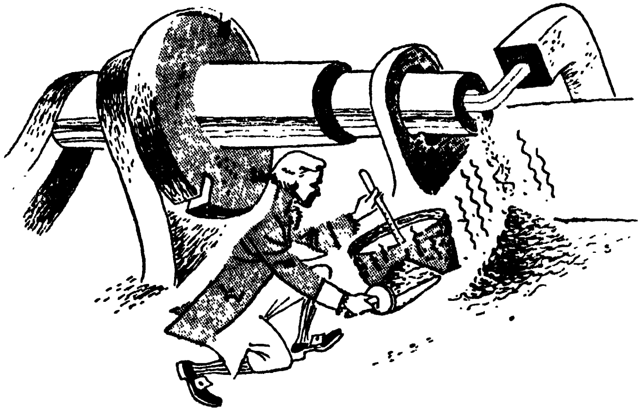
खुरच-खुरचकर गिरी हुई धातु के टुकड़े बहुत गर्म होते थे। टामसन ने यह जानने के लिए परीक्षण शुरू किये कि यह गर्मी कहाँ से आती है। उसने इस बात पर ध्यान दिया कि चाहे कितनी ही देर तक पीतल के बेलन को अन्दर से खुरचकर खोखला करने की प्रक्रिया जारी रखी जाये, ताप उसमें से निकलता ही रहेगा। यदि यह बात ठीक हो कि ताप एक बहने वाला पदार्थ होता है, जो किसी वस्तु के अन्दर विद्यमान रहता है, तो पीतल के बेलन में से गर्मी लगातार निकलती नहीं रहनी चाहिये। क्योंकि यदि ताप कोई बहने वाला पदार्थ हो, तो किसी भी चीज के अन्दर उसकी कुछ परिमित मात्रा ही रह सकती है।

टामसन ने मन में सोचा : 'यदि मैं इस ताप की मात्रा को नाप सकूँ, तो शायद मुझे इस रहस्य का कोई सूत्र मिल जाय।'

"घोड़े को जरा चाबुक तो लगाओ।" उसने नौकर से कहा। घोड़े ने चलना शुरू किया। वह रहट जैसी मशीन चलने लगी और पीतल को खोखला करने वाले औजार से पीतल की खुरचन गिरने लगी। टामसन ने जल्दी से इस गर्म-गर्म धातु का ढेर इकट्ठा किया और उसे पानी से भरी हुई एक बाल्टी में डाल दिया। उसके बाद उसने पानी को एक बड़े थर्मामीटर से हिलाना शुरू किया। थर्मामीटर में पारा ऊपर चढ़ने लगा। टामसन ने उस पारे को देखकर यह लिख लिया कि पारा कहाँ तक ऊपर पहुँचा है।

यह परीक्षण कई बार किया गया। बीच-बीच में टामसन गणना करके ताप की मात्रा का हिसाब लगाने लगता था। अन्त में जाकर एक बात उसके सामने बिलकुल स्पष्ट हो गयी :

'पानी का गर्म होना केवल इस बात पर निर्भर प्रतीत होता था कि घोड़े ने कितना श्रम किया है। हाँ यही बात है—घोड़े द्वारा किया गया श्रम ही वस्तुतः ताप में परिवर्तित हो गया है।'



टामसन ने गर्म धातु की खुरचन को पानी की बाल्टी में डुबो दिया।

पुरानी यह धारणा कि ताप एक बहने वाला पदार्थ है, और किसी भी पदार्थ में से ताप की केवल एक नियत मात्रा ही निकाली जा सकती है, अब सन्देहास्पद जान पड़ने लगी थी। टामसन के परीक्षणों से और लोगों को भी प्रोत्साहन मिला कि वे इस समस्या को सुलझाने में अपना दिमाग लड़ायें। बाद में जाकर जेम्स जूल के, जो एक शराब तैयार करने वाला अंग्रेज़ था और जिसे विज्ञान का बड़ा शौक था, परीक्षणों से भी टामसन के विचारों की पुष्टि हुई। जूल ने यांत्रिक ऊर्जा को ताप में बदलने के लिए अनेक तरह के उपायों का परीक्षण किया—

जैसे रगड़कर या पानी को हिलाकर या धातु के किसी टुकड़े को पीसकर उसने देखा कि ताप उत्पन्न होता है या नहीं। हर बार उसे यही मालूम हुआ कि ताप की एक निश्चित मात्रा प्राप्त करने के लिए श्रम की—अर्थात् ऊर्जा की—एक निश्चित मात्रा की आवश्यकता होती है।

नाप-जोख के बाद यह पता चला है कि यदि ताप का मूल्य श्रम द्वारा चुकाना पड़े, तो वह बहुत मँहगा पड़ता है। यदि ६० मील प्रति घंटे की चाल से दौड़ती हुई मोटरकार की सम्पूर्ण गतिक ऊर्जा को ताप में परिवर्तित कर दिया जाय, तो उससे केवल इतना ताप उत्पन्न हो सकेगा कि जिससे केवल चाय की एक केतली का पानी उबल सके। यह परिवर्तन उल्टी दिशा में भी किया जा सकता है। भाप से चलने वाले इंजिन या गैस-इंजिन में ताप को यान्त्रिक ऊर्जा के रूप में परिवर्तित किया जाता है। इस प्रकार का परिवर्तन कर पाना बहुत कठिन होता है और हमेशा इस प्रक्रिया में ताप की काफ़ी बड़ी मात्रा यों ही बिखर-बिखरा जाती है।

बेंजामिन टामसन और जेम्स जूल की खोजों को परस्पर मिलाने और उनके द्वारा महान् 'ऊर्जा सिद्धान्त' स्थापित करने का काम एक युवक जर्मन चिकित्सक राबर्ट मेयर ने किया। वह सिद्धान्त यह था कि ऊर्जा को एक रूप से दूसरे रूप में बदला तो जा सकता है, किन्तु ऊर्जा को न तो कभी उत्पन्न किया जा सकता है और न कभी नष्ट ही किया जा सकता है।

हालाँकि लोगों ने पहले पहल इस सिद्धान्त पर विश्वास नहीं किया, परन्तु बाद में जाकर यह अन्य सब वैज्ञानिक

नियमों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण और कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सारे ब्रह्मांड में कीटाणुओं के बिलबिलाने से लेकर आकाश में तीव्र वेग से दौड़ते हुए तारों तक प्रत्येक वस्तु पर यह नियम लागू होता है। आज तक कभी भी, कोई भी विज्ञानवेत्ता इस नियम का अपवाद नहीं ढूंढ़ पाया।

इस प्रकार आपने देख लिया कि हमारे आसपास की इस दुनिया में एक तो चीज़ है पदार्थ और दूसरी है ऊर्जा। ऊर्जा कुछ ऐसी चीज़ है, जो वस्तुओं को जीवन और गति देती है। यह ऊर्जा अनेक रूप धारण कर सकती है, परन्तु इसकी कुल मात्रा सदा पहले जितनी ही बनी रहती है। अगले अध्यायों में तुम पदार्थ पर कुछ और अच्छी तरह नजर डाल पाओगे और यह पता चला सकोगे कि पदार्थ किससे बना हुआ है।

अध्याय | ३

परमाणु की धारणा का जन्म

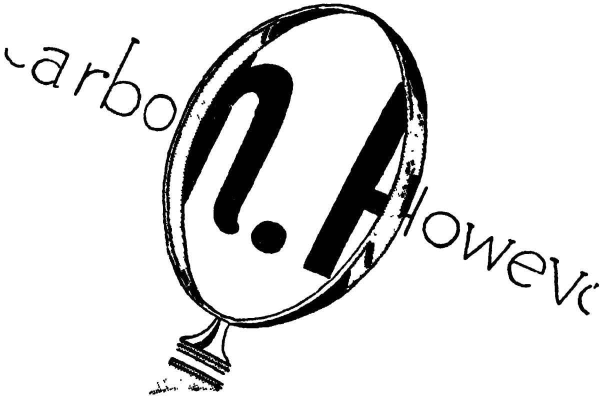
परमाणु कोई नई चीज़ नहीं है। यह ठीक है कि परमाणु शब्द पिछले कुछ वर्षों में ही सब लोगों की ज़बान पर चढ़ा है, परन्तु परमाणु की धारणा कम से कम लगभग ३००० वर्ष पुरानी है। यह ठीक है कि उस समय के बुद्धिमान से बुद्धिमान लोगों को भी इस चीज़ का कुछ ठीक-ठीक अन्दाज़ नहीं था कि परमाणु हैं क्या। यह अन्दाज़ बहुत बाद में आकर बन पाया। परन्तु कम से कम कुछ लोग प्रकृति का पर्यवेक्षण करना शुरू कर रहे थे और वे इस बात का प्रयत्न कर रहे थे कि जिन वस्तुओं को वे देखते हैं, उन्हें वे किसी प्रकार और अधिक भली भांति हृदयंगम कर सकें।

प्राचीन यूनान के दार्शनिकों में पदार्थ की बनावट के सम्बन्ध में बड़ा ज़ोरदार वाद-विवाद हुआ था। एक वर्ग का कहना था कि जो वस्तु वस्तुतः जैसी दिखाई पड़ती है, उसको उसी रूप में एक ठोस चीज़ मान लेना उचित है; क्योंकि यह बात बिलकुल स्पष्ट है। परन्तु दूसरे विचारकों का ज़ोरदार कथन था कि जो चीज़ें देखने में ठोस मालूम होती हैं, या लगातार एक जैसी बनी रहती हैं, वे भी वस्तुतः अनगिनत छोटे-छोटे कणों से बनी हुई हैं; और ये कण इतने छोटे हैं कि देखे नहीं जा सकते। उन्होंने इस सम्बन्ध में भी विचार-विमर्श किया कि यदि किसी

वस्तु को तोड़ा जाये, तो क्या होगा। कल्पना करो कि एक पत्थर को तोड़कर उसके दो टुकड़े कर दिये जायें। उसके बाद इनमें से एक टुकड़े के फिर दो टुकड़े कर दिये जायें; और इसी प्रकार हम हर टुकड़े के दो टुकड़े करते चले जायें, तो यह प्रक्रिया कब तक चलती रह सकती है? उनका विश्वास था कि यदि हम टुकड़े करते जाने की प्रक्रिया को जारी रखें, तो अन्त में उस चीज़ का एक ऐसा सूक्ष्मतम कण बच जायगा, जिससे छोटा कोई नहीं हो सकता। इस प्रकार के सूक्ष्मतम कण को उन्होंने 'परमाणु' नाम दिया।

यूनानी दार्शनिकों का यह अन्दाज़ शायद 'अन्धे के हाथ लगी बटेर' से अधिक कुछ नहीं था। इस प्रकार वे जिस निष्कर्ष तक पहुँच गये थे, उसको परीक्षणों द्वारा परखने के लिए उन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किया। यदि वे ऐसा प्रयत्न करते, तो शायद वे सत्य के मार्ग पर बहुत दूर आगे निकल गये होते। शायद उन्होंने यह कल्पना भी नहीं की होगी कि भविष्य में विज्ञान-वेत्ता लोग न केवल यह सिद्ध करने में समर्थ होंगे कि परमाणु सचमुच विद्यमान हैं, बल्कि वे विज्ञानवेत्ता उनकी नाप और तोल करने के भी उपाय ढूँढ़ निकालेंगे। यदि यूनानी दार्शनिकों को यह पता चलता कि अगर पानी की एक बूंद को पृथ्वी के आकार जितना बड़ा करके देखा जाय, तो उस बूंद में परमाणु केवल उतने बड़े दिखाई पड़ेंगे, जितनी बड़ी फुटबाल होती है, तो वे चकित रह जाते। या इसी तरह वे तब भी चकित रह जाते, जबकि उन्हें यह बताया जाता कि इस वाक्य के अन्त में 'हैं' के ऊपर अनुस्वार लगाने में जितनी स्याही लगी है, उसमें

कार्बन के ३० खरब परमाणु हैं। फिर भी उन्हें एक और बात का सन्देह था, जो शताब्दियों बाद आकर सत्य सिद्ध हुई है; वह यह कि परमाणु निरन्तर गति में रहते हैं।



'हैं' के ऊपर लगा अनुस्वार (ं) अरबों परमाणुओं से मिलकर बना है।

लोग कई सौ साल तक परमाणुओं के बारे में वार्तालाप और युक्ति-प्रयुक्ति करते रहे। परन्तु धीरे-धीरे ये विचार-विमर्श समाप्त होते गये। कुछ समय तक ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे यह सुन्दर प्रारम्भ योंही समाप्त हो जायेगा। परन्तु किसी अच्छे विचार को नष्ट कर पाना बहुत कठिन होता है। परमाणु सिद्धान्त को, आजकल इसे इसी नाम से पुकारा जाता है, अब से लगभग डेढ़ सौ साल पहले एक अंग्रेज़ अध्यापक जान डाल्टन ने फिर नया जीवन दिया।

हालाँकि डाल्टन बहुत ही गरीब था, फिर भी वह अपने लिए स्वयं उपकरण बनाकर वैज्ञानिक परीक्षण करता रहता

था। उसे अन्य बातों के साथ-साथ इस बात में भी बड़ी दिलचस्पी थी कि मौसम का सूक्ष्म निरीक्षण करे और प्रतिदिन के मौसम का अभिलेखन (रिकार्ड) रखे। इसके फलस्वरूप उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि आक्सीजन और नाइट्रोजन जैसी गैसें हवा में एक-दूसरे से किस प्रकार रासायनिक ढंग से मिल सकती हैं। उसके इस अध्ययन से ही रसायन विज्ञान वस्तुतः प्रारम्भ हुआ। परन्तु हमारी इस कहानी की दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि इससे परमाणु की धारणा फिर लोगों के सामने आई और इस बार वह और भी पक्के आधार पर स्थापित हुई।

सकड़ों सालों से परीक्षण करने वाले लोग तरह-तरह की चीज़ों की छानबीन करते रहे थे। लम्बे अनुभव से उन्हें यह बात समझ में आने लगी कि अनेक वस्तुएँ अलग-अलग तरीकों से 'दुष्प्रयोग' करने पर; जैसे पीसने या गरम करने पर, नये और बिलकुल भिन्न तत्वों में बँट जाती हैं। कल्पना करो कि तुम यह जानना चाहते हो कि चीनी किन-किन वस्तुओं से बनी है? साधारण चीनी को एक चम्मच में लेकर आग के ऊपर गर्म करो। तुम देखोगे कि उसमें से चटचट की आवाज आनी शुरू होती है। यदि तुम उस चटचटाती हुई चीनी के ऊपर एक चाकू का फलक रखो, तो तुम देखोगे कि उसके ऊपर भाप की धुंध जम जाती है। चटचट की आवाज़ और चाकू के फलक पर जमी हुई भाप से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह पानी चीनी में से आया है। ज्यों-ज्यों चीनी को और गर्म करते जाते हैं, त्यों-त्यों वह पिघलने लगती है, उसका रंग साँवला पड़ने लगता है और अन्त में वह

बिलकुल कोयले जैसी काली हो जाती है। असल में वह चीनी कोयला ही है। कोयला और चीनी का वह बचा हुआ काला अंश, दोनों कार्बन हैं; जिन्हें और आगे तोड़कर किसी और सरल तत्व में नहीं बदला जा सकता।

चीनी में से जो पानी निकला, वह क्या है? यह पता चलता है कि इस पानी को विभक्त करके और सरल वस्तुओं के रूप में बदला जा सकता है। लगभग डाल्टन के समय ही यह पता चल गया था कि पानी को फाड़ने का बिलकुल आसान तरीका यह है कि दो तारों को पानी के अन्दर रखकर उनके सिरों को बिजली की बैटरी के साथ जोड़ दिया जाय। बिजली की धारा के कारण एक तार के सिरे पर से पानी में से आक्सीजन गैस के बुलबुले उठने लगते हैं और दूसरी तार के सिरे से हाइड्रोजन गैस के बुलबुले उठते हैं। रसायनवेत्ता इन दोनों में से किसी भी गैस को विभक्त करके किसी अन्य सरल वस्तु के रूप में नहीं बदल पाये।

कार्बन, आक्सीजन, हाइड्रोजन और इसी तरह की लगभग सौ अन्य चीज़ें, जो अब तक खोजी जा चुकी हैं, रासायनिक तत्व कहलाती हैं। उनके अलावा और सब सामग्रियाँ, जो हमें अपने आसपास दिखाई पड़ती हैं—जैसे लकड़ी, पत्थर, दूध, रबड़, नमक और लाखों तरह की चीज़ें, वे सब इन्हीं थोड़े-से तत्वों के संयोग से बनी हुई हैं। इस प्रकार के तत्वों के संयोग रासायनिक 'समास' कहलाते हैं।

इस समय हमें जितने तत्व पता हैं, उनको खोज निकालने और अलग-अलग करने के लिए सारे संसार के विज्ञानवेत्ताओं

को कितने ही वर्षों तक बड़े धीरज के साथ काम करना पड़ा है। कुछ तत्व जैसे चाँदी, सोना, वंग (रांगा) और कार्बन, लोगों को बहुत पुराने समय से मालूम थे। परन्तु लोगों को यह पता नहीं था कि वे तत्व हैं और वे नमक, चूना या आल्कोहल की अपेक्षा कहीं अधिक सरल वस्तुएँ हैं। कुछ थोड़े-से तत्वों का पता पिछले कुछ वर्षों में ही चला है और यह सम्भव है कि कुछ और नये तत्व भी अभी पता चलें।

इन सौ के लगभग तत्वों में से अधिकांश तो बहुत ही दुर्लभ हैं, और वे हमारे आसपास की मामूली चीज़ों में नहीं पाये जाते। ऐसा लगता है कि जब यह सारा संसार बन रहा था, उस समय प्रकृति ने इसमें उन तत्वों की बस एक चुटकी भर डाल दी थी। असल में पृथ्वी, समुद्र और वायु में पाई जाने वाली मामूली सामग्रियाँ मुख्य रूप से लगभग ३० तत्वों और उनके समासों से बनी हैं। इन तत्वों की एक सूची नीचे दी जा रही है। प्रत्येक नाम के आगे वह छोटा-सा संक्षिप्त नाम या प्रतीक दिया गया है, जिसका रसायनवेत्ता अपनी पुस्तकों में प्रयोग करते हैं।

अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पाये जाने वाले कुछ रासायनिक तत्व

नाम	प्रतीक	वर्णन
ऐल्यूमिनम	Al (ऐल्यू)	हल्के वज़न की रुपहली धातु
बेरियम	Ba (बे)	नरम चमकीली धातु
ब्रोमीन	Br (ब्रो)	भूरे रंग का भारी द्रव
कैल्शियम	Ca (कै)	हल्के वज़न की चमकीली धातु

नाम	प्रतीक		वर्णन
कार्बन	C	(का)	काला ठोस पदार्थ या उज्ज्वल स्फटिक (हीरा)
क्लोरीन	Cl	(क्लो)	कुछ हरे-से पीले रंग की गैस
कोबाल्ट	Co	(को)	भुरभुरी धूसर-से रंग की धातु
ताम्बा	Cu	(तां)	नरम लाल रंग की धातु
फ्लोरीन	F	(फ्लो)	हल्की पीले रंग की गैस
सोना	Au	(स्व)	भारी नरम पीले रंग की धातु
हाइड्रोजन	H	(हा)	हल्के वज़न की अदृश्य गैस
आयोडीन	I	(आयो)	गहरे जामुनी रंग के स्फटिक
लोहा	Fe	(लो)	धूसर-से रंग की धातु
सीसा	Pb	(सी)	भारी नरम नीले धूसर-से रंग की धातु
लिथियम	Li	(लि)	हल्के वज़न की नरम सफ़ेद धातु
मैगनेशियम	Mg	(मै)	हल्के वज़न की सफ़ेद धातु
मैंगेनीज़	Mn	(मैंग)	भंगुर, धूसर सफ़ेद रंग की धातु
पारा	Hg	(पा)	भारी, रुपहली द्रव धातु
निकल	Ni	(नि)	कठोर सफ़ेद धातु
नाइट्रोजन	N	(ना)	अदृश्य गैस
आक्सीजन	O	(आ)	अदृश्य गैस
फास्फोरस	P	(फा)	मोम जैसा सफ़ेद ठोस पदार्थ
पोटाशियम	K	(पो)	हल्के वज़न की नरम रुपहली धातु
सिलिकोन	Si	(सि)	भंगुर, धूसर रंग के स्फटिक
चाँदी	Ag	(रज)	भारी चमकीली सफ़ेद धातु

सोडियम	Na	(सो)	हल्के वज़न की नरम रुपहली धातु
गंधक	S	(गं)	हल्के पीले भंगुर स्फटिक
वंग	Sn	(वं)	रुपहली सफ़ेद धातु
टिटैनियम	Ti	(टि)	चमकीली सफ़ेद धातु
जस्ता	Zn	(ज)	भंगुर नीली सफ़ेद धातु

अधिक सम्भव यही है कि आपने इनमें से बहुत-से तत्वों को कभी नहीं देखा होगा। इसका कारण यह है कि वे आमतौर से समासों के रूप में मिलते हैं, जिनमें कि उनका अपना असली रूप छिप जाता है। उदाहरण के लिए, सोडियम एक चमकीली धातु है, और क्लोरीन एक गैस है, जिसकी गंध परेशान करने वाली होती है। परन्तु इन दोनों चीजों से बने हुए एक समास का तुम अपने भोजन में हर रोज़ इस्तेमाल करते हो, रसायनवेत्ता इसे सोडियम क्लोराइड कहते हैं। तुम उसे नमक कहते हो। आप यह कभी कल्पना भी नहीं कर सकते कि नमक के सफ़ेद-सफ़ेद स्फटिकों के अन्दर बड़े अजीब ढंग से सोडियम नाम की धातु और हरे-से रंग की क्लोरीन गैस छिपी हुई हो सकती है।

पृथ्वी पर सबसे अधिक मात्रा में पाया जाने वाला तत्व आक्सीजन है। आक्सीजन न केवल हवा और पानी में पाई जाती है, बल्कि चट्टानों और खानों से निकाले जाने वाले पदार्थों में भी आक्सीजन मिली रहती है। बहुत बार यह सिलीकोन के साथ मिली होती है, जैसे बिल्लौरी पत्थर या अनेक तरह की रेत के रूप में। आक्सीजन, सिलिकोन और ऐल्यूमिनम के आपस में मिलने से मिट्टी जैसी चीजें बनती हैं। पृथ्वी के ऊपर

की ठोस पपड़ी का तीन-चौथाई से भी अधिक भाग केवल इन तीन तत्वों से बना हुआ है।

अब तुम इस बात को समझ पाने की स्थिति में हो कि परमाणुओं के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान को बढ़ाने के लिए डाल्टन ने क्या कुछ किया। उसने निश्चय किया कि वह यह पता चलायेगा कि किसी भी समास को बनाने के लिए प्रत्येक तत्वों की कितनी मात्रा की आवश्यकता होती है। अनेक तत्वों के साथ परीक्षण करके उसने यह पता चलाया कि दो या दो से अधिक तत्वों का आपस में मिश्रण तो चाहे जितनी मात्रा में किया जा सकता है, परन्तु यदि हम यह चाहें कि दो या दो से अधिक तत्वों के मेल से कोई वास्तविक समास तैयार कर लिया जाय, तो उन तत्वों की एक निश्चित मात्रा का ही उपयोग किया जाना चाहिये। यदि उस निश्चित अनुपात के अलावा किसी कम या अधिक मात्रा में तत्व आपस में मिलाये जायें, तो उनमें से किसी न किसी तत्व की कुछ मात्रा समास बनाने के बाद भी बची रह जायगी।

जान डाल्टन ने इस बात पर विचार करना शुरू किया कि प्रकृति को इस बात का इतना आग्रह क्यों है कि तत्वों की एक निश्चित मात्रा ही आपस में रासायनिक रूप से मिल सके। यह विचार करते हुए अधिकांश लोग तो केवल इतना कहकर सन्तुष्ट हो जाते कि ऐसा केवल इसलिए होता है क्योंकि प्रकृति का नियम ही ऐसा है। परन्तु अच्छे विज्ञानवेत्ता की भाँति डाल्टन ने इस प्रश्न की और अधिक गहराई तक जाने की कोशिश की। जहाँ भी तत्वों को आपस में मिलाया जाता था, वहीं पर उसे

यह बात दिखाई पड़ती थी। जब तक इस बात का कोई सुसंगत कारण न मिल जाय, तब तक उसे चैन नहीं पड़ सकती थी।

विज्ञानवेत्ता हमेशा ऐसे सामान्य नियमों की खोज में लगे रहते हैं, जिन्हें वे सब वस्तुओं पर समान रूप से लागू कर सकें और जिन नियमों द्वारा सब चीज़ों को एक-दूसरे से जोड़ा जा सके और उनका आपस का सम्बन्ध निश्चित किया जा सके। विज्ञानवेत्ता यह सोचते हैं कि अगर वे कोई ऐसा नियम ढूंढ़ निकालें—जो उन सब अलग-अलग चीजों पर समान रूप से लागू होता हो, जिन्हें उन्होंने देखा है—तो वे उन चीजों के रहस्य को और अच्छी तरह समझ सकेंगे। इस प्रकार का नियम वैज्ञानिक सिद्धान्त कहलाता है। यह मत समझो, जैसा की कुछ लोग लापरवाही से समझने लगते हैं, कि वैज्ञानिक सिद्धान्त या नियम कोई एक काल्पनिक सूझ होती है, जिसे कि कोई भी आदमी सपने में देख सकता है या इलहाम की तरह जान सकता है। वैज्ञानिक सिद्धान्त ऐसा कदापि नहीं होता। अच्छे सिद्धान्त के आधार ठोस तथ्य होने चाहियें। जब एक बार कोई सिद्धान्त अच्छी तरह स्थापित हो जाता है, तो फिर वह और नई खोजें करने के लिए विज्ञान का विश्वास योग्य पथप्रदर्शक बन सकता है।

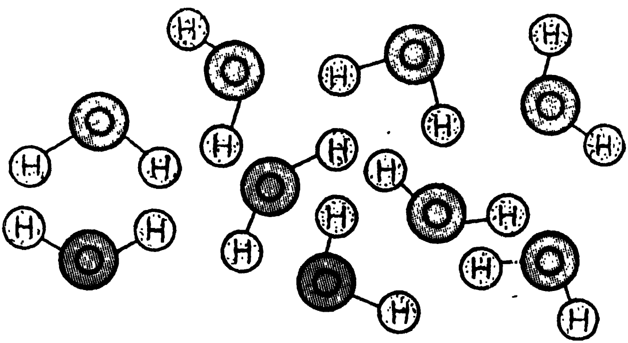
डाल्टन ने प्राचीन यूनानियों की परमाणु की धारणा को लिया और उसे और भी अधिक सुनिश्चित रूप दिया। उसने मन में सोचा : 'कल्पना करो कि प्रत्येक रासायनिक तत्व परमाणुओं से बना हुआ है। और अब कल्पना करो कि एक तत्व

के, उदाहरण के लिए हाइड्रोजन के, सब परमाणु बिलकुल एक जैसे हैं; परन्तु वे किसी दूसरे तत्व के, जैसे आक्सीजन के, परमाणुओं के बिलकुल भिन्न हैं।' उसने यह सुझाव प्रस्तुत किया कि अलग-अलग तत्वों के परमाणुओं का भार अलग-अलग होता है। जब दो तत्व आपस में रासायनिक रूप से मिलते हैं, तो एक तत्व के परमाणुओं की एक निश्चित संख्या दूसरे तत्व के निश्चित परमाणुओं के साथ ही मिलती है और इस प्रकार वे उस समास पदार्थ का एक अणु (मौलीक्यूल) बना पाते हैं। इस प्रकार एक-दूसरे से गुथे हुए परमाणु भी अपना ठीक वही भार बनाये रखते हैं, जो उनका तब था, जबकि वे दूसरे तत्व के परमाणुओं से अलग थे।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तत्व आपस में सदा एक निश्चित अनुपात में ही किसलिए मिलते हैं। उदाहरण के लिए पानी को लीजिये जो आक्सीजन और हाइड्रोजन का एक समास है। उसपर यह बात इस तरह लागू होती है। यदि आप उन दोनों गैसों को एक बड़ी टंकी में मिलायें और फिर उन गैसों के मिश्रण में एक चिनगारी पैदा कर दें, तो एक ज़ोर का धमाका होगा और पानी बन जायगा। यदि हर एक औंस हाइड्रोजन के मुकाबले में आठ औंस आक्सीजन आपने मिलाई होगी तो आप देखेंगे कि दोनों गैसें एक-दूसरे से पूरी तरह मिलकर पानी बन गई हैं और धमाके के बाद न तो कुछ हाइड्रोजन ही बाकी बची है और न आक्सीजन। परन्तु यदि आप इनमें से किसी भी एक गैस को इस अनुपात की अपेक्षा अधिक मात्रा में मिला दें, तो उस गैस का कुछ भाग धमाका होने के

बाद भी दूसरी गैस से मिले बिना बाकी बच जायगा।

इस प्रकार की जानकारी से रसायनवेताओं को यह पता चलता है कि विभिन्न समासों के अणु किस प्रकार बने हुए हैं। इस सम्बन्ध में एक छोटी-सी कहानी से आपको इस सबको समझने में सहायता मिल सकती है। कल्पना कीजिये कि एक फल बेचने वाला कुछ छोटे-छोटे पैकेट तैयार करता है, जिनके अन्दर बेर और सेब भरे हुए हैं। सब पैकेट एक-दूसरे के बिल्कुल बराबर हैं। वह व्यापारी हमें बताता है कि प्रत्येक बेर का वज़न एक तोला है और हर एक सेब का वज़न १६ तोले। दिन समाप्त होने पर उसे पता चलता है कि उसने जितने सेब इस्तेमाल किये, उनका वज़न बेरों के वज़न से ठीक आठ गुना है। क्या आप बतला सकते हैं कि हर एक पैकेट में कितने बेर और कितने सेब रखे गये थे? उत्तर यह है कि हर पैकेट में दो बेर और एक सेब ही रखा गया होगा।



पानी का प्रत्येक अणु दो हाइड्रोजन परमाणु तथा एक आक्सीजन परमाणु के मिश्रण से बनता है।

इस कहानी में जिसे हमने बेर कहा है, वह हाइड्रोजन का परमाणु है और जिसे सेब कहा है, वह आक्सीजन के परमाणु का प्रतीक है। प्रत्येक बंधा हुआ पैकेट पानी का अणु समझा जा सकता है। रसायनवेत्ताओं को मालूम है कि आक्सीजन के परमाणु का भार हाइड्रोजन के परमाणु से सोलह गुना होता है और यदि पानी बनाना हो, तो एक पौंड हाइड्रोजन ठीक ८ पौंड आक्सीजन के साथ मिलेगा। इससे उनके सामने यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पानी के प्रत्येक अणु में हर आक्सीजन के एक परमाणु के साथ हाइड्रोजन के दो परमाणु मिले होने चाहिएं। ठीक उसी तरह जैसे कि फलों के पैकेटों में हरएक सेव के साथ दो बेर थे।

जब किसी समास को तत्वों के रूप में फाड़ा जाता है, तब भी ठीक यही बात होती है। जब पानी को उसके तत्वों के रूप में अलग-अलग किया जाता है, तो हमेशा एक औंस हाइड्रोजन के साथ-साथ ८ औंस आक्सीजन प्राप्त होती है। चाहे हम पानी की एक बूंद को फाड़ें और चाहे एक गैलन पानी को फाड़ें; उसमें से निकालने वाली इन दोनों गैसों का अनुपात सदा यही रहता है।

परमाणु की धारणा से हम चीज़ों की रूपरेखा को बहुत स्पष्ट रूप में समझ सकते हैं। इस धारणा से हमें पता चलता है कि संसार की सब वस्तुएँ परमाणुओं और अणुओं से बनीं हुई हैं; ठीक उसी तरह जैसे कि हमारी भाषा हज़ारों, लाखों शब्दों से बनी हुई है और वे सब के सब शब्द वर्णमाला के केवल ४६ अक्षरों के संयोग से बने हुए हैं। विज्ञानवेत्ताओं ने परमाणु

के सिद्धान्त को बड़ी शीघ्रता से अपना लिया, क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया कि इससे रसायन-विज्ञान को और दृढ़ आधार पर स्थापित करने में बहुमूल्य सहायता मिलेगी। इस सम्बन्ध में प्रगति बड़ी तेज़ी से हुई। डाल्टन को केवल लगभग २० तत्व मालूम थे। उसके बाद पचास से भी कम वर्षों में इन ज्ञात तत्वों की संख्या बढ़कर ७५ तक जा पहुँची। परमाणु एक वास्तविक चीज़ बनता जा रहा था, हालाँकि किसी भी व्यक्ति ने कभी भी किसी परमाणु को देखा नहीं था।

अनेक समासों के साथ परीक्षण करने के बाद रसायन-वेत्ताओं ने संख्याओं की एक ऐसी सूची तैयार कर ली, जो तत्वों के परमाणुओं के भार को बतलाती है। ये संख्याएँ परमाणु-भार कहलाती हैं। सुविधा के लिए आक्सीजन की संख्या १६ रखी गई; और दूसरे सब परमाणु-भारों को इससे नीचे या इससे ऊपर की ओर नापा जाता है। हाइड्रोजन से लेकर, जो सबसे हल्का परमाणु है, अगले पहले १२ तत्वों के ठीक-ठीक परमाणु-भार नीचे दिये जाते हैं।

कुछ तत्वों के परमाणु-भार

नाम	प्रतीक	परमाणु-भार
हाइड्रोजन	H (हा)	१.००८
हीलियम	He (ही)	४.००३
लिथियम	Li (लि)	६.९४०
बैरीलियम	Be (बै)	९.०१५
बोरोन	B (बो)	१०.८२
कार्बन	C (क)	१२.०१

नाम	प्रतीक	परमाणु-भार
नाइट्रोजन	N (ना)	१४.०१
आक्सीजन	O (आ)	१६.००
फ्लोरीन	F (फ्लो)	१६.००
नियोन	Ne (नि)	२०.१८
सोडियम	Na (सो)	२३.००
मैंग्नेशियम	Mg (मै)	२४.३२

इन संख्याओं का यह अर्थ नहीं है कि हाइड्रोजन के एक परमाणु का भार लगभग १ पौंड या १ औंस होता है। वस्तुतः एक पौंड हाइड्रोजन में १० करोड़ शंख से भी कुछ अधिक ही परमाणु होते हैं। इन संख्याओं का अर्थ केवल इतना है कि हाइड्रोजन का परमाणु आक्सीजन के एक परमाणु की अपेक्षा लगभग केवल सोलहवाँ हिस्सा भारी होता है और नियोन का परमाणु हाइड्रोजन के परमाणु से लगभग बीस गुना भारी होता है। इन सब संख्याओं का इसी प्रकार का अर्थ है।

परन्तु अभी बहुत काफी काम करने को बाकी पड़ा था। विज्ञानवेत्ताओं को इस समय तक भी परमाणुओं के वास्तविक आकार के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था और न उन्हें यही मालूम था कि परमाणु गति करते हैं या नहीं ? और यदि वे गति करते भी हैं, तो किस तरह ? यह सब, और इस प्रकार का और भी बहुत-सा ज्ञान आगामी वर्षों में प्राप्त किया जाना था।

अध्याय | ४

क्या परमाणु सचमुच हैं ?

डाल्टन के समय तक परमाणु की धारणा में मुख्य रूप से केवल उन रसायनवेत्ताओं की ही दिलचस्पी थी, जो धीरे-धीरे इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे थे कि परमाणु सचमुच होते हैं। वे यह पता करने की कोशिश कर रहे थे कि वस्तुएँ एक दूसरे से भिन्न किस तरह होती हैं। परन्तु उनका यह कार्य पूरा होने से पहले ही कुछ विज्ञानवेत्ताओं को यह पता चलने लगा कि संसार में कुछ ऐसे सामान्य नियम हैं, जिनसे यह मालूम होता है कि सब तरह के पदार्थ एक ही ढंग से काम कर रहे हैं। इन विज्ञानवेत्ताओं ने ऊर्जा के सब रूपों का, जिनमें कि प्रकाश और बिजली भी सम्मिलित हैं, अध्ययन किया। इस प्रकार का अध्ययन रसायन विज्ञान से इतना पृथक् ढंग का था कि वह विज्ञान की एक अलग ही शाखा बन गया, जिसे भौतिकी विज्ञान कहा जाता है; और इन समस्याओं पर विचार करने वाले लोग भौतिकी शास्त्री कहलाये।

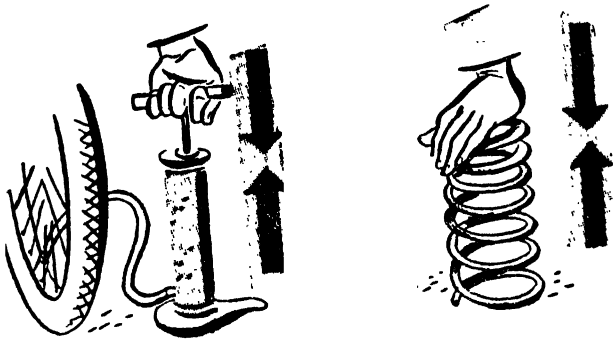
डाल्टन से लगभग १०० वर्ष पहले महान विज्ञानवेत्ता आइजक न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण की धारणा खोज निकाली थी। गुरुत्वाकर्षण ही वह रहस्यमयी शक्ति है, जिसके कारण आकाश में उछाला हुआ पत्थर जमीन पर गिर पड़ता है; और गुरुत्वाकर्षण की ही यह शक्ति पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों को सूर्य के चारों

ओर घूमते हुए उनके ठीक-ठीक रास्ते पर बनाये रखती है। न्यूटन ने इस विषय में भी विचार किया था कि क्या पदार्थ के अणुओं में कोई और प्रकार की शक्ति भी काम कर रही है या नहीं। उसका विश्वास था कि वायु या अन्य प्रकार की गैसें जिस वस्तु के अन्दर रखी जाती हैं, वे उसकी दीवारों से टक्कर मारती हैं। इस टक्कर मारने का कारण यह है कि कोई शक्ति अणुओं को एक दूसरे पर धकेलती है। यह बहुत कुछ वैसी ही हालत है, जैसी किसी एक सन्दूक में दबा-दबाकर भरी हुई रबड़ की गेंदों की होती है।

परन्तु सब विज्ञानवेत्ता इस विचार से सहमत नहीं थे। कुछ लोग प्राचीन यूनानी विचारकों के अनुसार यह मानते थे कि परमाणु निरन्तर गति करते रहते हैं। उनका यह अनुमान था कि गैसों के अंदर दबाव का कारण यह नहीं है कि अणु दबा-दबाकर किसी एक जगह में भर दिये गये हैं, बल्कि उसका कारण यह है कि वे अणु निरंतर गतिशील रहते हैं। उन्होंने अपने मन में किसी बोतल में भरी हुई गैस का चित्र इस रूप में खींचा कि जैसे वह गैस बहुत छोटे-छोटे कणों का विशाल समूह है, और वे कण निरन्तर इधर-उधर उड़ते रहते हैं। कभी वे एक दूसरे से टकराते हैं और कभी जाकर बोतल की दीवारों से टकराते हैं। क्योंकि इस प्रकार टकरानेवाले अणुओं की संख्या बहुत अधिक होती है, इसलिए गैसों में एक प्रकार का निरन्तर दबाव प्रतीत होने लगता है।

यह समझने के लिए, कि इस विचारधारा पर चलते-चलते वे कहाँ पहुंचे होंगे, एक मामूली पम्प का ख्याल करें, जिससे

लड़के फुटबाल में या साइकिल की ट्यूब में हवा भरते हैं। वस्तुतः यह पम्प हवा को दबाने वाली एक मशीन है, जिसके द्वारा हवा को दबाकर थोड़े स्थान में समाने के लिए मजबूर कर दिया जाता है। साइकिल की ट्यूब के अन्दर भरी हुई हवा उसकी अपेक्षा आधे से भी कम स्थान घेरती है, जितना कि वह ट्यूब से बाहर होने पर घेरती। ट्यूब में हवा भरते हुए यदि आप ध्यान दें, तो देखेंगे कि ज्यों-ज्यों ट्यूब में हवा अधिक और अधिक भरती जाती है, त्यों-त्यों पम्प को दबाना कठिन और



आप जितना अधिक नीचे की ओर दबाते जायेंगे, दबाना उतना ही कठिन होता जायगा।

अधिक कठिन होता जाता है। यदि हवा को दबाकर पहले की अपेक्षा कम स्थान में कर दिया जाय, तो वह वापस धक्का देने के लिए कमानी (स्प्रिंग) का-सा काम करती है।

अब कल्पना करें कि किसी पम्प की नली का मुँह बाहर से बन्द है। ऐसी दशा में जब पम्प के हत्थे को दबाया जाता है, तब हवा

को बाहर निकलने के लिए कोई स्थान नहीं मिलता और इसलिए वह पम्प की तली में ही कसकर बन्द हो जाती है। गति करते हुए अणु अब इस पम्प की दीवारों से अधिकाधिक संख्या में टक्कर मारते हैं, क्योंकि अब उन्हें दूर तक चलने-फिरने का मौका नहीं मिलता। अधिक टक्करें मारने का अर्थ है—हवा का अधिक दबाव।

एक युवक आयरिश विज्ञानवेत्ता ने, जिसका नाम राबर्ट बोयल था, और जो न्यूटन के समय जीवित था, यह बात खोज निकाली कि जब किसी गैस को दबाकर पहले की अपेक्षा आधे स्थान में सीमित कर दिया जाता है, तो उसका दबाव ठीक दुगुना हो जाता है। यदि गैस को दबाकर एक तिहाई स्थान में सीमित कर दिया जाय, तो उसका दबाव तिगुना हो जाता है। इसी प्रकार स्थान कम होते जाने के साथ गैस का दबाव बढ़ता जाता है। यह बात स्पष्ट होती दीख पड़ती है कि जब आप गैस को दबाकर किसी थोड़े स्थान में भर रहे होते हैं, उस समय आप रबड़ की गेंद जैसी कुछ चीजों को अपेक्षाकृत थोड़े स्थान में नहीं भर रहे होते, जैसा कि न्यूटन समझता था, बल्कि उसके बजाय आप केवल छोटे-छोटे और तेजी से गति करते हुए अणुओं के घूमने-फिरने के स्थान को कम कर रहे होते हैं।

बोयल की इस खोज से कई और नये विचारों को जन्म मिला। विज्ञानवेत्ताओं ने गैस से भरी हुई बोतल की इस रूप में कल्पना करनी शुरू की कि जैसे वह बोतल एक कमरा हो, जिसके अन्दर अनगिनत टेनिस की गेंदें उछलती फिर रही हों, और जो क्षणभर को भी ठहरती न हों। इस सम्बन्ध में गण-

नाएँ की गयीं। यह पता चला कि केवल गैस के दबाव और भार का पता होने से विज्ञानवेत्ता यह बतला सकते हैं कि उस गैस के अणु कितनी तेजी से गति कर रहे हैं। वायु में आक्सीजन और नाइट्रोजन के अणुओं की औसत चाल प्रति सैकिंड १७०० फीट ठहरती है। यह चाल २२ नम्बर की राइफल की गोली की चाल से दुगुनी है। हाइड्रोजन के अणुओं की, जो इन दोनों गैसों की अपेक्षा बहुत हल्के होते हैं, चाल इनसे लगभग चार गुनी होती है।

उस समय कोई आदमी यह विश्वास करने को तैयार नहीं था कि कोई वस्तु इतनी तेजी से गति कर सकती है। और बहुत समय तक तो भौतिकी शास्त्री भी गम्भीरतापूर्वक इस विचार को अपनाने को तैयार न हुए। आखिर किसीने इन गति करते हुए अणुओं को कभी देखा भी है? किसीने नहीं। परन्तु एक अंग्रेज वनस्पति विज्ञानवेत्ता ने, जिसका नाम राबर्ट ब्राउन था, अणुओं को देख पाने की अपेक्षा थोड़ा-सा नीचे के स्तर की चीज देखी थी। वह अपने सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र से कुछ छोटे-छोटे पौधों के पानी में तैरते हुए सैलों (कोष्ठों) को देख रहा था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि वे सैल एक खास ढंग की कम्पन की-सी गति से लगातार थिरकते जा रहे थे। इस थिरकने और उछलने की सबसे अजीब और चक्कर में डालनेवाली विशेषता यह थी कि यह गति कभी बन्द ही नहीं होती थी।

ब्राउन ने यह जो अद्भुत वस्तु देखी थी, इसका कोई भी कारण बता पाने में वह असमर्थ था; और बहुत वर्ष बाद कहीं जाकर अन्य लोगों ने इस गति की व्याख्या खोज निकाली; और

वह व्याख्या यह थी कि गैसों की तरह द्रव पदार्थों के अणु भी बड़ी तेजी से गति करते रहते हैं। जब चारों ओर से आ-आकर पानी के अणु पौधों के सैलों के टकराते थे, तो वे सैल उछलते-कूदते दिखायी पड़ते थे। इस क्रिया का नाम इसको खोजनेवाले के नाम पर 'ब्राउनियन गति' पड़ गया। अणुओं की वास्तविक गति के सम्बन्ध में हम जो कुछ देख पाये हैं, वह अधिक से अधिक यही है। इस प्रकार अणु अपने आप में भले ही अदृश्य हैं, परन्तु उनकी गति का प्रभाव बिल्कुल स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

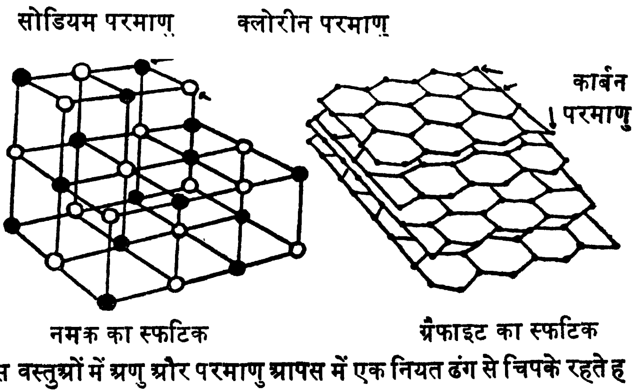
अन्त में जाकर भौतिकी शास्त्री एक ऐसी स्थिति तक पहुँच गये, जहाँ वे गैसों, द्रवों और ठोस पदार्थों के साथ परीक्षण करते समय देखे हुए अनेक प्रभावों को अच्छी तरह समझ सकते थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने यह समझना शुरू कर दिया था कि अणुओं की अस्त-व्यस्त गति की गतिक ऊर्जा वैसी ही वस्तु है, जैसी कि ताप। जब आप किसी वस्तु को गरम करते हैं, तो वस्तुतः आप उसके अणुओं को गति करने के लिए और अधिक ऊर्जा दे रहे होते हैं। यदि आप अचानक दुर्घटना-वश किसी गर्म अंगीठी को छू लें, तो गर्म धातु के तेजी से गति करते हुए अणु वस्तुतः आपके चर्म के अणुओं पर आकर जोर से टक्कर मारते हैं।

हवा में तेजी से उड़कर जाती हुई बन्दूक की गोली में गतिक ऊर्जा होती है और यह स्पष्ट दीखता है कि कोई चीज गति कर रही है। परन्तु जब ,गोली अपने लक्ष्य पर जाकर ठहर जाती है, तब भी उसमें गति होती है। पर अब वह गति दिखाई

नहीं पड़ती, क्योंकि वह सबकी सब अणुओं की गति के रूप में परिवर्तित हो चुकी है और अणुओं की यह गति ही ताप है।

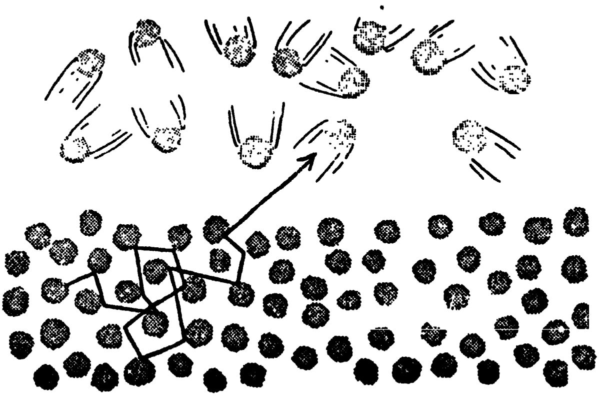
यदि किसी पदार्थ के अणुओं में से सारी की सारी ताप-गति निकाली जा सके, तो उसका तापमान घटकर 'नितान्त शून्य' तक पहुँच जायगा। यह 'नितान्त शून्य' सामान्य ताप मापक के शून्य तापांश से लगभग ४६० तापांश नीचे होता है। पिछले कुछ वर्षों में परीक्षण करनेवाले लोगों ने ऐसे तरीके ढूंढ़ निकाले हैं, जिनसे चीजों को इतना ठंडा किया जा सकता है कि उनका तापमान इस नितान्त शून्य बिन्दु से एक तापांश का कुछ हजारवाँ भाग ही अधिक रह जाय। परन्तु अब तक ठीक इस नितान्त शून्य बिन्दु तक किसी वस्तु को ठंडा नहीं किया जा सका।

धीरे-धीरे विज्ञानवेत्ताओं ने इस सम्बन्ध में विचार बनाने शुरू किये कि पदार्थ अणुओं से किस तरह बना है। अब वे यह समझते हैं कि किसी भी ठोस पदार्थ में परमाणु और अणु एक दूसरे से किसी नियत प्रकार के क्रम में चिपके रहते हैं। वे किन्हीं



ठोस वस्तुओं में अणु और परमाणु आपस में एक नियत ढंग से चिपके रहते ह।

खास दिशाओं में बनी हुई समान पंक्तियों में एक दूसरे के ऊपर जमे रहते हैं। ये पंक्तियाँ आम तौर से एक दूसरे से एक इंच के १० करोड़वें भाग से अधिक दूर नहीं होतीं। इस प्रकार की क्रमबद्धता को 'स्फटिक' कहते हैं। नमक के एक स्फटिक में सोडियम के परमाणु और क्लोरीन के परमाणु एक काल्पनिक घनाकृति ढाँचे में कोनों पर से एक दूसरे को जकड़े रहते हैं।



जो अणु द्रव से अलग हो जाते हैं, वे वाष्प बन जाते हैं।

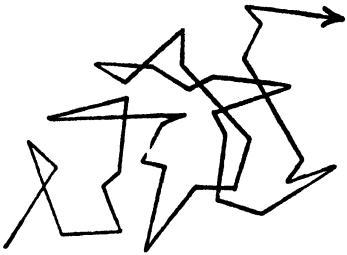
ग्रैफाइट के स्फटिक में कार्बन के परमाणु षट्कोण के आकार में एक दूसरे के साथ और एक के ऊपर एक तह के रूप में जमे रहते हैं।

परन्तु यह मत समझें कि परमाणु बिल्कुल शान्त और स्थिर रहते हैं बल्कि उनमें से प्रत्येक—बड़ी तेजी से काँपती हुई-सी, ताप उत्पन्न करने वाली—गति करता रहता है। यदि किसी स्फटिक को गर्म किया जाय, तो यह गति बढ़ती चली जाती है

और अन्त में एक खास तापमान पर परमाणु एक दूसरे से अलग हो जाते हैं और इस प्रकार ठोस पदार्थ पिघल जाता है। अब वह पदार्थ द्रव बन जाता है और उसके परमाणु या अणु इधर-उधर बहने-फिसलने के लिए स्वतन्त्र हो जाते हैं। क्योंकि उस द्रव के अणु लगातार एक दूसरे से टकराते रहते हैं, इसलिए उनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं, जो अन्य अणुओं की अपेक्षा कभी-कभी बहुत अधिक तेजी से गति करने लगते हैं। यदि इन अधिक तेजी से गति करते हुए अणुओं में से कोई अणु द्रव की सतह के ऊपर आ पहुँचता है, तो सम्भव है कि वह उछलकर द्रव से बिल्कुल ही अलग हो जाय। यह स्थिति वाष्पीभवन कहलाती है। जो अणु इस ढंग से द्रव से अलग हो जाते हैं, वे वाष्प बन जाते हैं, और यह वाष्प कोई गैस होती है।

यदि एक गैस को किसी दूसरी गैस के साथ मिलाया जाय, तो हम यह बात अच्छी तरह देख सकते हैं कि गति करते हुए अणु किस प्रकार आचरण करते हैं। यदि आप किसी इत्र की बोतल का ढक्कन खोल दें, तो द्रव इत्र वाष्प बनकर हवा में उड़ने लगता है। परन्तु कमरे के दूसरे कोने पर सुगन्ध पहुँचने तक कुछ समय लगता है। यदि कमरे में हवा न भरी होती, तो इत्र के अणुओं को प्रति सैकिंड कई सौ फीट की गति से चलते हुए कमरे के दूसरे सिरे तक पहुँचने में कुछ समय ही न लगता। परन्तु अब उन्हें कमरे के दूसरे किनारे पहुँचने के लिए वायु के अणुओं की भारी भीड़ में से अपना रास्ता बनाते हुए जाना होता है।

वाष्प का अणु जब आगे चलता है, तो वह देखता है कि जरा दूर चलने पर ही वह किसी वायु के अणु से जा टकराता है; और उस टक्कर के कारण वह फिर किसी बिलकुल ही अलग दिशा में चल पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि किसी वाष्प के एक अणु का चलने का मार्ग बहुत ही बीहड़,



वाष्प के अणु का मार्ग बहुत कुछ गोरखधंधे जैसा टेढ़ा-मेढ़ा होता है।

और गोरखधन्धे की तरह टेढ़ा-मेढ़ा होता है। यह मार्ग बहुत कुछ वैसा ही होता है जैसा ब्राउनियन गति में, जिसका कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, छोटे-छोटे ठोस कणों का होता है। कोई भी गैस, जैसे हवा, अधिकांशतः रिक्त स्थान ही होती है, जिसमें बीच-बीच में अणु बिखरे होते हैं। किन्तु क्योंकि ये अणु निरन्तर गति करते रहते हैं, इसलिए ये उस सारे स्थान को घेरे रखते हैं और उसके अन्दर दूसरी चीजों को उसी तरह नहीं आने देते, जैसे कि सैनिक किसी आधीन देश पर अपना कब्जा किये रहते हैं और दूसरे सैनिकों को उस देश में नहीं आने देते।

यह अभी कुल ४० या ५० वर्ष पहले की बात है कि जब

भौतिकी शास्त्री इस धारणा को इतनी दूर तक बढ़ा ले जाने में सफल हुए, कि जहाँ पहुँचकर वे अणुओं की गिनती कर सकें, उनके आकार को नाप सकें और उनके भार को तोल सकें। वस्तुतः जब हम अणुओं के नापने या तोलने की बात कहते हैं, तो हमारा अभिप्राय बहुत कुछ अप्रत्यक्ष ढंग का होता है। क्योंकि यह बात इस समय तक भी सत्य है किसी भी आदमी ने अब तक असल में किसी एक भी परमाणु या अणु को देखा नहीं है; हालाँकि विज्ञान कुछ बड़े-बड़े अणुओं का 'ऐक्स रे' के प्रयोग द्वारा या 'इलैक्ट्रोन सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र' के द्वारा कुछ धुंधला-सा छायाचित्र-सा ले पाने में सफल हो गया है।

भले ही अणु अभी तक अदृश्य हैं और आँखों से दिखायी नहीं पड़ते, फिर भी वे इतने काफी संकेत दे देते हैं कि जिनसे भौतिकी शास्त्री उन अणुओं के भार और आकार जैसी निश्चित चीजों का पता चला सकते हैं। क्योंकि बहुत अलग-अलग ढंग से परीक्षण करने पर भी एक ही परिणाम निकलता है, इसलिए यह असम्भव है कि अणुओं की सारी की सारी धारणा ही गलत हो। भौतिकी शास्त्री के लिए अणु का अस्तित्व उसी तरह सत्य है, जिस तरह उस कुर्सी का अस्तित्व सत्य है, जिसपर वह बैठता है।

इन परीक्षणों से निकाले गये परिणाम, यदि हम किसी तरह उन्हें ठीक-ठीक हृदयंगम कर सकें, तो सचमुच ही आश्चर्यजनक हैं। परमाणु और अणु इतने छोटे हैं कि विश्वास कर पाना कठिन है। यदि आक्सीजन के ८ करोड़ अणुओं को ईटों की

तरह कतार में एक के बाद एक रख दिया जाय, तो उस कतार की लम्बाई कुल एक इंच होगी। यदि आप मामूली नमक के एक कण को किसी तरह बड़ा करते जायें, और उसे इतना बड़ा करें कि वह ऐम्पायर स्टेट बिल्डग जितना बड़ा हो जाय, तो उस दाने में प्रत्येक परमाणु आपको नमक के उस कण जितना बड़ा दिखायी पड़ेगा, जिसे आपने देखना शुरू किया था।

एक बार एक अंग्रेज विज्ञानवेत्ता ने एक कहानी सुनायी थी, जिससे आपको शायद यह समझने में सहायता मिलेगी कि मामूली चीजों में कितनी अधिक संख्या में अणु होते हैं। एक गिलास को पानी से भर लोजिये। अब कल्पना कीजिये कि आपके पास कोई ऐसा उपाय है कि उस पानी के प्रत्येक अणु पर आप कोई ऐसा चिन्ह लगा सकते हैं, जिससे यदि वह अणु आपको फिर कभी दिखायी पड़ें, तो आप उसे पहचान सकें। अब उस पानी को नाली में डाल दें। इसके बाद तब तक प्रतीक्षा करें जब तक कि वह पानी नदियों में होता हुआ जाकर संसार के सब समुद्रों में घुलमिल न जाय। उसके बाद संसार के किसी कोने में समुद्र के तट पर जाइये और उसमें से पानी का एक गिलास भर लीजिये। क्या आपका ख्याल है कि इस गिलास में उन अणुओं में से कोई एक भी अणु होगा, जो उस गिलास में थे, जिनको हम पहचान सकते थे और जिन्हें हमने नाली में डाल दिया था? इसका सही उत्तर यह है कि जो गिलास आपने अब भरा है, उसमें एक हजार से भी अधिक वे अणु होंगे।

अदृश्य अणुओं की कहानी अभी और भी आगे चलती है। वायु में उड़ता हुआ अणु दूसरे अणुओं से एक सैकिंड में लगभग

५० करोड़ बार टकराता है। आपको यह मालूम है कि ये अणु कितनी तेजी से गति करते हैं! इससे आप अनुमान कर सकते हैं कि औसतन वायु का एक अणु मुश्किल से एक इंच का कुछ करोड़वां हिस्सा ही चल पाता होगा कि वह दूसरे अणु से जा टकराता है। शायद आपने कभी यह भी सोचा हो कि इस प्रकार एक दूसरे से टकराते रहने के बाद भी वायु के अणु अन्त में गिरकर फर्श पर क्यों नहीं बैठ जाते और कमरे की दीवारों की ओर उछाली गयी रबड़ की गेंदों की तरह अन्त में स्थिर और शान्त क्यों नहीं हो जाते ? आजकल विज्ञानवेत्ताओं ने यह जान लिया है कि अणुओं की ये परस्पर टक्करें वस्तुतः कठोर पदार्थों की आपस में टक्कर नहीं है। इसके बजाय होता यह है कि अणु जब एक दूसरे के बहुत निकट आ जाते हैं, तो वे एक दूसरे को प्रबल विद्युत शक्ति से परे धकेल देते हैं। इस प्रकार उनकी ऊर्जा का अपव्यय नहीं होता और उनकी गति कभी समाप्त नहीं होती।

अणुओं की इस अजीबोगरीब दुनियां में जो कुछ होता है, वह सुनने में विज्ञान की एक रोमांचकारी किस्से-कहानी जैसा प्रतीत होता है; परन्तु वस्तुतः ये सब बातें परीक्षणों से सिद्ध हो चुकी हैं और ये बिलकुल सत्य हैं। इनके सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। जब ये तथ्य मालूम हो गये, तो इनसे और भी अधिक आश्चर्यजनक लोगों के लिए रास्ता तैयार हो गया; और ये खोजें पिछले लगभग ५० वर्षों में एक के बाद एक बड़ी जल्दी-जल्दी होती आई हैं।

अध्याय | ५

परमाणु से भी छोटे

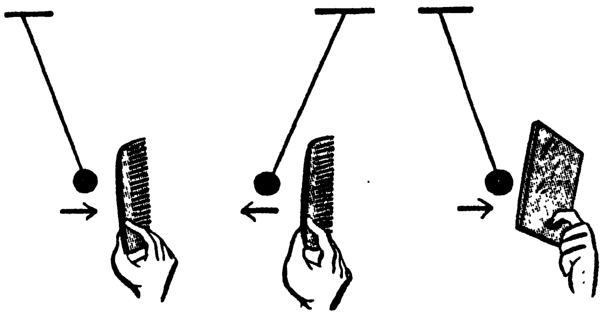
परमाणुओं के सम्बन्ध में कुछ जानने की तैयारी करने के लिए अगली बात यह है कि अपने बालों में कंघा फेरा जाय। जिस कंघे को आपने अपने बालों में खूब अच्छी तरह कई बार फेरा होगा, उसमें यह विशेषता उत्पन्न हो जायगी कि वह कागज के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपनी ओर खींचने लगेगा। यदि वायु में सील न हो, तो बालों में कंघा करते समय आपको हल्की-सी 'चट-चट' की आवाज भी सुनायी देगी; और यदि कमरे में अंधेरा हो, तो आपको बहुत छोटी-छोटी चिनगारियाँ भी दिखायी पड़ सकती हैं। वस्तुतः ये चिनगारियाँ और 'चट-चट' छोटे पैमाने पर बिजली की चमक और बादल की गरज हैं।

प्राचीन यूनान में भी लोगों का ध्यान इन चीजों की ओर गया था। उन्होंने यह पता चला लिया था कि यदि अम्बर के किसी टुकड़े को किसी समूर पर या ऊनी कपड़े पर रगड़ा जाय, तो उसमें एक अद्भुत शक्ति यह आ जाती है कि वह छोटे-छोटे तिनकों को अपनी ओर खींचने लगता है; और वे तिनके अजीब ढंग से उसके आसपास नाचने लगते हैं। इसके बाद कई शताब्दियों तक इस सम्बन्ध में कोई और नयी बात पता नहीं चली। जिस समय यूरोप के लोग धार्मिक अत्याचारों से तंग आकर अमेरिका जाने की तैयारी कर रहे थे, उस समय

अंग्रेज विज्ञानवेत्ताओं ने यह बात खोज निकाली कि अम्बर के अतिरिक्त और भी कई चीजें इसी तरह छोटे-छोटे तिनकों को अपनी ओर खींचने लगती हैं। यद्यपि उन्हें यह पक्का पता नहीं था कि उन चीजों में दूसरी चीजों को खींचने की यह शक्ति किस कारण आ जाती है, फिर भी उन्होंने इसे बिजली (इलैक्ट्रिसिटी) नाम दिया। 'इलैक्ट्रिसिटी' शब्द का सम्बन्ध यूनानी भाषा में अम्बर के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द से है।

उन विज्ञानवेत्ताओं ने और भी बहुत-सी बातों का पता चलाया; और जो बातें उन्होंने मालूम कीं, उनमें से कुछ की पड़ताल आप स्वयं भी एक बिजली का पता चलाने वाला यन्त्र, जिसे 'इलैक्ट्रोस्कोप' कहा जाता है, बनाकर कर सकते हैं। एक अच्छी तरह सूखा हुआ आलू लीजिये और उसमें से काटकर एक आधा इंच मोटी गोली बना लीजिये। इस गोली के ऊपर बहुत पतली धातु की एक पतरी—जैसी टाफी इत्यादि लपेटने के काम आती है—लपेट दीजिये। अब पतरी में लिपटी हुई उस गोली को रेशम के लगभग २ फीट लम्बे धागे में बाँधकर लटका दीजिये। एक कंघा लेकर उसे अपने बालों में कई बार फेरिये; और तब उस कंघे को गोली की ओर ले जाइये। ज्योंही कंघा उस गोली के कुछ इंच पास तक पहुँचेगा, त्योंही वह गोली खिचकर कंघे की ओर आने लगेगी।

अगर कभी संयोग से यह कंघा और गोली दोनों एक दूसरे से छू जायें, तो एक बिल्कुल नयी बात होने लगती है। गोली तुरन्त कंघे से परे हट जाती है, और ज्यों-ज्यों कंघे को गोली के पास लाया जाये, त्यों-त्यों गोली पीछे और पीछे हटती जाती



गोली रगड़े हुए कंघे की ओर खिंचकर आती है। छूने के बाद गोली दूर हट जाती है। ...परन्तु वह रगड़े हुए शीशे की ओर ज़ोर से खिंचकर आती है।

है। इससे एक बड़ी महत्वपूर्ण बात पता चलती है। बिजली में ऐसी शक्तियाँ भी हैं, जो चीजों को एक दूसरे से परे धकेलती हैं; और ऐसी भी शक्तियाँ हैं, जो चीजों को एक दूसरे के पास खींचती हैं।

शीशे की एक साफ छड़ को रेशम के कपड़े पर रगड़िये। यदि आप शीशे की इस छड़ को उस लटकायी हुई गोली के पास लायेंगे, तो वे दोनों एक दूसरे की ओर खिंच आयेंगे। अब गोली को अपनी उंगली से छू दीजिये। इससे सारा प्रभाव समाप्त हो जायेगा और गोली फिर वैसी ही रह जायेगी, जैसी कि वह इस परीक्षण को शुरू करने से पहले थी।

अब इस सारे परीक्षण को नये सिरे से दुबारा शुरू कीजिये। परन्तु पहले जहाँ आपने कंघे का प्रयोग किया था, वहाँ शीशे की छड़ का प्रयोग करें; और जहाँ पहले परीक्षण में शीशे का

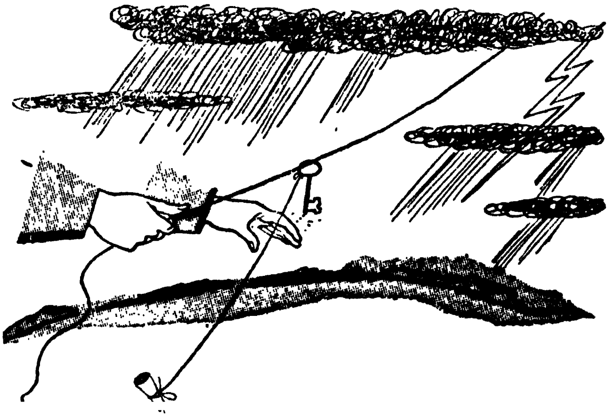
प्रयोग किया था, वहाँ कंघे का प्रयोग करें। परिणाम ठीक वही रहेगा, जो पहले परीक्षण में रहा था।

प्रत्येक बार जब भी आपने गोली को बालों में फेरे हुए कंघे से या रेशम पर रगड़े हुए शीशे से छुआ था, उस गोली में एक प्रकार की बिजली का प्रभार (चार्ज) आ गया था। इन परीक्षणों में जो कुछ भी हुआ, उसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि बिजली के दो, एक दूसरे से उल्टे ढंग के, प्रभार होते हैं। अमरीका के वैज्ञानिक बेंजामिन फ्रैंकलिन ने यह सुझाव रखा था कि सरलता के लिए इन दोनों प्रकार के प्रभारों को धन विद्युत (पोजिटिव; +) और ऋण विद्युत (नैगेटिव; —) नाम दिया जाय। कुछ वस्तुओं को, जैसे शीशे को, रगड़ने से उनमें धन विद्युत का प्रभार आ जाता है। कुछ अन्य वस्तुओं को, जैसे प्लास्टिक को, रगड़ने से उनमें ऋण विद्युत का प्रभार आ जाता है।

इस बात को सारांश रूप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक ही प्रकार के प्रभार एक दूसरे को अपने से विपरीत दिशा में धकेलते हैं; और विरोधी प्रभार एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। इसका अर्थ यह है कि धन विद्युत से भरी हुई दो वस्तुएँ एक दूसरे को परे धकेलेंगी; और इसी प्रकार ऋण विद्युत से भरी हुई दो वस्तुएँ एक दूसरे को परे धकेलेंगी; किन्तु धन विद्युत से भरी हुई एक वस्तु और ऋण विद्युत से भरी हुई दूसरी वस्तु दोनों एक दूसरे को अपनी ओर खींचेंगी। इस एक स्पष्ट नियम में ऊपर के परीक्षण की सारी बात आ गयी है।

बेंजामिन फ्रैंकलिन ने अपने प्रसिद्ध पतंग वाले परीक्षण से

यह बात सिद्ध कर दी थी कि आकाश में चमकने वाली बिजली विद्युत की एक बहुत बड़ी चिनगारी के सिवाय और कुछ नहीं है। उसके कुछ ही समय बाद और बहुत-से लोग यह खोजने में जुट गये कि बिजली से काम कैसे लिया जा सकता है। अन्त में विज्ञानवेत्ताओं और इंजीनियरों ने यह पता चला लिया कि



बेंजामिन फ्रैंकलिन ने यह सिद्ध कर दिखाया कि बादलों की बिजली चिनगारी ही है।

यदि बिजली को नियन्त्रित कर लिया जाये और उसे तारों में से गुजारा जाये, तो वह अनेक उपयोगी काम कर सकती है। वह बिजली की मोटरों को चला सकती है; टेलीफोन में आवाज़ को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जा सकती है; और मकानों में प्रकाश देने के काम आ सकती है। रेडियो, रडार और टेलीविजन जैसे आधुनिक युग के चमत्कार केवल बिजली की सहायता से ही सम्भव हो सके हैं; और बिजली का

यह प्रारम्भ उसी सीधे-सादे परीक्षण से शुरू हुआ था, जब किसीने पहले पहल अम्बर के टुकड़े को समूर पर रगड़ा था।

सौ वर्ष पहले विज्ञानवेत्ताओं को इस बात पर उचित रूप से गर्व था कि उन्होंने परमाणुओं, अणुओं और बिजली के बारे में काफी कुछ पता चला लिया था; परन्तु उस समय तक भी उन्होंने इस बात को नहीं पहचाना था कि ये सब विषय एक दूसरे से कितने निकटरूप से सम्बद्ध हैं। इस दिशा में अगला बड़ा कदम तब उठाया गया, जबकि उन्होंने अपने कुछ परीक्षणों में अणुओं को उनके सामान्य मार्ग से अलग ले चलने की एक और अच्छी पद्धति खोज निकाली।



नली में चिनगारी एक हल्की, निःशब्द चमक बन गई।

यदि किसी वस्तु में बहुत ऊँचे वोल्टेज की बिजली भर दी जाय, तो उस वस्तु से एक चिनगारी निकलकर हवा में से होती हुई निकट की किसी वस्तु तक पहुँच जायेगी। यह चीज हर दृष्टि से ठीक वैसी ही है, जैसे आकाश में बिजली एक बादल से कूदकर दूसरे बादल तक जाती है, या किसी तूफान के समय बिजली बादल से जमीन पर आ गिरती है।

यह जानने के लिए कि ऐसी चिनगारी होने की दशा में क्या कुछ होता है, विज्ञानवेत्ताओं ने एक शीशे की नली में

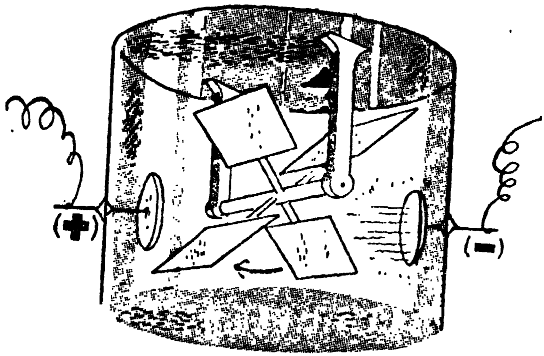
जैसी ऊपर चित्र में दिखायी गयी है, बिजली की चिनगारी को रखा। इन दिनों तक हवा खींचकर स्थान रिक्त कर देने वाले बढ़िया पम्प तैयार हो चुके थे, इसलिए परीक्षणकर्ताओं को यह सुविधा रही कि वे नली में से हवा को खींचकर बाहर कर दें, और यह पता चला सकें कि वायु का दबाव हल्का होते जाने की दशा में क्या कुछ होता है। जब उन्होंने शीशे की नली के अन्दर से वायु के काफी अणु निकाल दिये, तो चिनगारी का रूप-रंग बहुत बदल गया। नली के अन्दर की हवा बाहर निकाले जाने के साथ-साथ तेज और चटचट करती हुई चिनगारी के स्थान पर एक हल्की और निःशब्द चमक उत्पन्न होने लगी। जब नली में वायु का सौवें से भी कम हिस्सा रह गया, तब चमक सारी नली में भर उठी और उसमें से एक तेज गुलाबी-सा प्रकाश सब दिशाओं में फैलने लगा। यह चीज आजकल हमें जहाँ-तहाँ दीख पड़ने वाले नियोन विज्ञापन-पट्टों से बिलकुल भिन्न नहीं थी। अन्तर केवल इतना था कि आजकल के इन विज्ञापन-पट्टों में शीशे की नलियों के अन्दर वायु के स्थान पर नियोन गैस या पारे के वाष्प या और कोई गैस होती है।

इस प्रकार की नली के अन्दर बड़ी पेचीदा बातें हो रही होती हैं। गैस के अणु धातु की पतरियों के बीच में बिजली के प्रभार को एक ओर से दूसरी ओर तक लाने और ले जाने में सहायता करते हैं। यदि ऐसी नली में से बाकी वायु भी निकाल ली जाय, तो अन्त में चमक समाप्त हो जाती है; क्योंकि तब उस नली के अन्दर बिजली की धारा को ले जाने लायक पर्याप्त

अणु नहीं बचते। जिस समय पम्प उस नली में से इतनी हवा निकाल चुकता है कि उसमें पहले की अपेक्षा हवा का एक लाखवाँ अंश ही बाकी बचे, उस समय धातु की पतरियों के बीच में प्रकाश बिलकुल नहीं होता। परन्तु इस समय शीशे की नली की दीवारों में से कुछ नीली-हरी चमक निकलने लगती है।

यह चमक शीशे की नली के केवल उन हिस्सों से निकलती है, जो बिजली की ऋण प्लेट के सामने होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह चमक उन किरणों के कारण उत्पन्न होती है, जो बिजली की इस ऋण प्लेट से सीधी रेखाओं में बाहर निकलती हैं। ये किरणें क्या हो सकती हैं, इस विषय में दो बातें सम्भव हैं। या तो ये किरणें किसी प्रकार की प्रकाश किरणें हैं, और या फिर ये सूक्ष्म कणों की धाराएँ हैं। परीक्षणकर्ता यह खोजने में जुट गये कि इन दोनों धारणाओं में से कौन-सी धारणा सत्य है। एक विज्ञानवेत्ता ने इस प्रकार की रिक्त नली के अन्दर एक छोटा पंखा-सा लगाया। जब ये किरणें इस पंखे के पंखों से आकर टकराती थीं, तो वह घूमने लगता था। यह बात निश्चित रूप से इस धारणा के पक्ष में जाती थी कि ये किरणें कणों की धाराएँ हैं।

दूसरे परीक्षणकर्ताओं ने यह पता चलाया कि जब किसी चुम्बक को ऐसी नली के पास ले जाया जाता है, तो ये किरणें एक ओर को झुक जाती हैं। इससे यह बात सिद्ध होती थी कि इन कणों में बिजली का प्रभार था; क्योंकि यह बात पहले मालूम हो चुकी थी कि बिजली के प्रभारों से युक्त कोई भी बहती हुई धारा चुम्बक के प्रभाव से एक ओर को झुक जाती है। इस बात से



जब किरणें घूमने वाले पंखे पर टकराती हैं, तो वह घूमने लगता है।

वस्तुतः यह धारणा समाप्त ही हो गयी कि ये किरणें प्रकाश की किरणें हैं। क्योंकि आप जानते हैं कि आपके टार्च में से निकलती हुई प्रकाश की किरणों को उसके सामने चुम्बक रखकर किसी भी ओर मोड़ पाना असम्भव है। इस प्रकार अब से लगभग ५० वर्ष पहले जब अधिकांश विज्ञानवेत्ता यह सोच चुके थे कि उस समय तक प्रत्येक महत्वपूर्ण वस्तु का पता लगाया जा चुका है, उनके सामने यह एक ऐसी वस्तु आ खड़ी हुई, जो बिलकुल ही नयी थी। ये रहस्यपूर्ण प्रभारयुक्त कण आखिर क्या हैं ? और यदि उनका परमाणुओं से कोई सम्बन्ध हो, तो वह क्या है ?

इस प्रश्न का उत्तर इंग्लैंड में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जोसफ जान टामसन के परीक्षणों से मिला। यह प्रोफेसर द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने से कुछ पहले तक जीवित था। उससे पहले दूसरे विज्ञानवेत्ता जितना काम कर चुके थे,

उसको सावधानी से पड़ताल करने के बाद उसने पता चलाया कि ये किरणें चुम्बक से तो किसी एक ओर को झुकायी जा ही सकती हैं, साथ ही बिजली की शक्ति द्वारा भी इन्हें किसी ओर को झुकाया जा सकता है। तब उसने एक ऐसी वायुशून्य नली बनायी, जिसमें ये किरणें चुम्बक की लपेटों (कौइल) द्वारा या बिजली के प्रभार से युक्त धातु की प्लेटों द्वारा किसी एक ओर झुकायी जा सकती थीं। उसका अनुमान था कि इससे इस विषय में कुछ और अधिक पता चल जायगा कि ये विस्मय-जनक किरणें किस प्रकार के कणों से बनी हैं।

इस परीक्षण का बड़ा आश्चर्यजनक परिणाम यह निकला कि यह पता चला कि जिन कणों से ये किरणें बनी हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं। वे सब कण नली के ठीक एक ही सिरे पर जाकर टकराते थे, चाहे वह पतरी, जिसमें से वे निकलते थे, किसी भी धातु की क्यों न बनी हो; या चाहे परीक्षण शुरू करते समय नली में कोई भी गैस क्यों न रखी गयी हो। यदि ये कण अलग-अलग ढंग के होते, तो वे अलग-अलग फैल जाते, क्योंकि चुम्बक के खिचाव से अपेक्षाकृत हल्के कण भारी कणों की अपेक्षा कुछ अधिक दूर तक खिच आते। किन्तु यहाँ तो हर मामले में सब कणों का भार बिलकुल एक ही था; और उनमें से प्रत्येक कण ठीक एक जितना ही ऋण बिजली का प्रभार लिये हुए था। इन कणों को 'इलैक्ट्रोन' नाम दिया गया।

सबसे अधिक विश्वास न करने योग्य बात यह थी कि जब इलैक्ट्रोन का भार जाँचा गया, तो वह हल्के से हल्के परमाणु हाइड्रोजन के एक हजारवें भाग से भी कम निकला। अधिकांश

भौतिकी शास्त्रियों ने व्यर्थ समझकर इलैक्ट्रोन की धारणा के ऊपर विचार करना ही बन्द कर दिया। स्वयं टामसन के मन में भी इसके सम्बन्ध में सन्देह पैदा हो गये।

परन्तु नहीं; वस्तुतः इलैक्ट्रोन की धारणा सत्य थी। अन्य विज्ञानवेत्ताओं ने बिजली के उस प्रभार को भी नापा, जो इलैक्ट्रोन के अन्दर होता है। यह प्रभार इतना कम था कि विश्वास कर पाना कठिन है। आजकल हम सब जानते हैं कि आपके कमरे में जो धारा बिजली के बल्ब को जलाती है, वह तांबे की तार के परमाणुओं के बीच में से गुजरते हुए इलैक्ट्रोनों के एक विशाल दल से ही बनी हुई है। इलैक्ट्रोन इतने छोटे होते हैं कि बिजली के बल्ब को जलाने के लिए प्रति सैकिंड ३ शंख इलैक्ट्रोनों को बल्ब की तार में से गुजरना पड़ता है।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों अनेक प्रकार के पदार्थों में से इलैक्ट्रोनों को निकालने के उपाय खोज लिये गये। प्रबल बिजली की शक्ति द्वारा उनको बाहर निकाला जा सकता है, जैसे कि वायुरहित नलियों में निकाला जाता था। तीव्रगति करते हुए कणों की चोट द्वारा उन्हें अलग किया जा सकता है; या फिर किसी गर्म तार को खूब गर्म करके उन्हें उबालने की प्रक्रिया द्वारा अलग किया जा सकता है। धातु के किसी टुकड़े पर से उन्हें प्रकाश की तरंगों द्वारा झटका देकर अलग किया जा सकता है। चाहे हम किसी तरह इलैक्ट्रनों को किसी भी वस्तु से पृथक करें, किन्तु वे सदा ठीक एक ही ढंग के होते हैं। और क्योंकि वे परमाणुओं की अपेक्षा इतने हल्के और इतने छोटे होते हैं, इसलिए विज्ञानवेत्ताओं को विवश हो-

कर स्वीकार करना पड़ा कि इलैक्ट्रोन स्वयं परमाणु के ही अंग होने चाहियें।

और अब वह पुरानी धारणा कहाँ रही कि परमाणुओं को विभक्त करके किसी और सरल रूप में नहीं बदला जा सकता? अब इससे आगे इसके सम्बन्ध में बिलकुल नये ढंग से ही सोचना आवश्यक हो गया, क्योंकि यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि परमाणु कुछ उनसे भी छोटी वस्तुओं से मिलकर बने हुए हैं। परमाणु का एक अंग इलैक्ट्रोन है। क्या परमाणु के अंग किसी और प्रकार के कण भी होंगे? अवश्य ही कोई और भी कण होने चाहियें, क्योंकि यह बात सोचने लायक नहीं थी कि परमाणुओं के अन्दर केवल ऋण बिजली ही होती होगी। बिलकुल सीधी-सादी कल्पना यही की जा सकती थी कि प्रत्येक परमाणु के अन्दर इतनी धन बिजली भी होगी जिससे परमाणु के अन्दर विद्यमान इक्लैट्रोनों की ऋण बिजली का प्रभार सन्तुलित हो जाय। और यही बात अन्त में जाकर सच निकली।

अध्याय | ६

कुछ परमाणु टूटते रहते हैं

अब हमारी कहानी लौटकर प्रथम विश्वयुद्ध का आरम्भ होने से कुछ पहले के समय तक जा पहुँचती है। लन्दन में बकिंघम महल की राजकीय नृत्यशाला में अनेक बड़े-बड़े लोगों की भीड़ विद्यमान थी। उस विशाल कमरे के एक किनारे पर ऊँचे मंच पर इंग्लैंड का नरेश बैठा था। लोगों की एक पंक्ति धीरे-धीरे बरामदे में से उतरकर आगे बढ़ने लगी। एक-एक करके वे राजा के पास पहुँचे। अन्त में एक ऊँचे और बलिष्ठ व्यक्ति की राजा के पास पहुँचने की बारी आई। उसने सिर झुकाकर अभिवादन किया और उसके बाद घुटनों के बल राज-सिंहासन के सामने बैठ गया। एक अनुचर ने राजा को एक तलवार थमाई। राजा ने उस तलवार से उस झुके हुए व्यक्ति के दोनों कन्धे छुए और कहा : "सर अर्नेस्ट, अब उठिये।"

एक छज्जे से एक पतली सफेद बालों वाली स्त्री इस समारोह को देख रही थी। वह दूर आस्ट्रेलिया से यात्रा करके आई थी, इसलिए बहुत थकी हुई थी; फिर भी वह बड़ी उत्सुकता के साथ उस दृश्य को देख रही थी और उसके चेहरे पर एक गर्वभरी मुस्कान खेल रही थी। इसका कारण यह था कि अर्नेस्ट रदरफोर्ड उसीका पुत्र था, जो एक मामूली किसान से बड़ा प्रतिभाशाली विज्ञानवेत्ता बन गया था। इस समय उसे

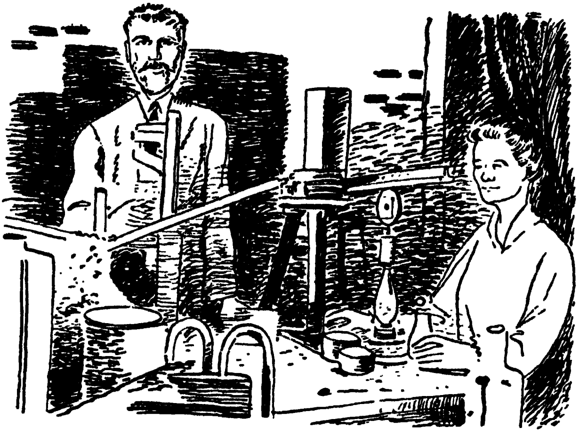
एक ऐसा सर्वोच्च सम्मान प्राप्त हो रहा था, जो कि किसी कृतज्ञ राष्ट्र की ओर से किसी व्यक्ति को प्रदान किया जा सकता है।

२४ वर्ष की आयु में रदरफोर्ड अपनी जन्मभूमि को छोड़कर टामसन की प्रयोगशाला में भौतिकी का अध्ययन करने के लिए आ गया था। इस तरुण विज्ञानवेत्ता में बड़ी प्रतिभा दिखाई पड़ती थी; और बहुत शीघ्र ही वह स्वयं अपने नये-नये परीक्षण करने लगा। यह १८९८ का वर्ष था, जिस समय स्पेन और अमेरिका में युद्ध चल रहा था।

लगभग इसी समय यह पता चला कि जिस पदार्थ के अन्दर यूरेनियम तत्व होता है, उसमें से इस प्रकार की किरणें निकलती हैं कि जो सामान्य पदार्थों के आर-पार चली जाती हैं। पियरे क्यूरी और मेरी क्यूरी, दोनों इस बात की खोज में जुट गये कि ये असाधारण किरणें क्या हैं, और ये कहाँ से आती हैं। अब सब कोई जानते हैं कि किस प्रकार ये दोनों वर्षों तक मेहनत करते रहे और अन्त में उन्होंने कई रासायनिक तत्वों का पता चलाया। इन नये तत्वों में से एक तत्व रेडियम भी था, जो यूरेनियम की अपेक्षा कई लाख गुना अधिक सक्रिय सिद्ध हुआ।

और नये परीक्षण करने से और भी अनेक रेडियो-सक्रिय तत्वों का पता चला। रेडियो-सक्रिय में जो 'रेडियो' शब्द है, उसका सम्बन्ध उस रेडियो से बिलकुल नहीं है, जिससे हम गीत, खबरें इत्यादि सुनते हैं। रेडियो-सक्रिय का अर्थ यह है कि इन तत्वों के परमाणुओं से कुछ विशेष प्रकार की किरणें

निरन्तर निकलती रहती हैं।



पियरे क्यूरी और मेरी क्यूरी ने नये-नये तत्वों का पता चलाया।

यह विकिरण अर्थात् किरणों का निकलना क्या वस्तु है ? विज्ञान को इसका पता चलाकर ही रहना था। अर्नेस्ट रदर-फोर्ड ने इस प्रश्न के उत्तर का कुछ अंश खोज निकाला। कुछ किरणें प्रबल होती हैं; परन्तु वे बहुत दूर तक नहीं जा पातीं। कागज का एक मामूली तख्ता भी उन्हें पूरी तरह रोक लेता है। रदरफोर्ड ने इन किरणों को 'अलफा' किरण नाम दिया। दूसरे प्रकार की किरणें ऐसी पता चलीं, कि जिनमें ऊर्जा तो कम थी, परन्तु वे अलफा किरणों की अपेक्षा सैकड़ों गुना अधिक दूर जा सकती थीं। इन किरणों को उसने 'बीटा' किरण नाम दिया। उसके बाद जल्दी ही विकिरण के एक तीसरे रूप का पता चला। ये किरणें पहली दोनों किरणों की अपेक्षा कहीं

अधिक पारगामी सिद्ध हुईं; क्योंकि ये किरणें पत्थर की मोटी दीवार के आर-पार भी बड़ी आसानी से आ-जा सकती हैं। इनको 'गामा' किरण नाम दिया गया। अल्फा, बीटा और गामा, यूनानी वर्णमाला के पहले तीन अक्षर हैं, उसी तरह जैसे हिन्दी में 'क' 'ख' 'ग' हैं। अंग्रेजी भाषा का शब्द 'अल्फाबैट' भी, जिसका अर्थ वर्णमाला होता है, इन्हीं पहले दो अक्षरों के नाम पर बना है।

रदरफोर्ड तथा उसके साथ काम करने वाले लोगों ने कई रेडियो-सक्रिय तत्वों में से निकलने वाली इन प्रत्येक प्रकार की किरणों के गुण-धर्मों को खोज निकालने की कोशिश की और इसमें वे सफल हुए। इस सारी खोज में एक गुर यह मालूम हुआ कि 'अल्फा' और 'बीटा' किरणें बिजली या चुम्बक की शक्तियों द्वारा किसी एक ओर को झुकाई जा सकती हैं; ठीक उसी तरह जैसे कि टामसन के परीक्षणों में इलैक्ट्रोनों को बिजली या चुम्बक द्वारा किसी एक ओर को झुकाया जा सकता था। परन्तु 'गामा' किरणें बिजली या चुम्बक द्वारा बिलकुल नहीं झुकाई जा सकतीं। जिसका अर्थ यह था कि ये किरणें प्रकाश की तरंगों की भाँति हैं। ये गामा किरणें 'ऐक्स' किरणों से मिलती-जुलती सिद्ध हुईं; किन्तु अन्तर इतना था कि ये 'ऐक्स' किरणों की अपेक्षा भी कहीं अधिक पारगामी थीं, और कैन्सर के इलाज के लिए ये उपयोगी सिद्ध हुईं।

अल्फा और बीटा किरणें बिजली या चुम्बक की शक्ति द्वारा जिन दिशाओं में झुकती थीं, उनसे परीक्षण करने वालों ने यह पता चला लिया कि अल्फा किरणें धन विद्युत के प्रभार

से युक्त कणों की धाराएँ हैं, और बीटा किरणें ऋण विद्युत के प्रभार से युक्त कणों की धाराएँ हैं। यह सिद्ध करने में बहुत समय नहीं लगा कि बीटा कण वस्तुतः इलेक्ट्रोन ही हैं। वायु रहित नली में गतिक ऊर्जा प्राप्त करने के बजाय वे अनेक रेडियो-सक्रिय पदार्थों के परमाणुओं में से स्वभावतः बाहर की ओर तीव्र गति से निकलते रहते हैं।

अल्फा किरणें झुकती अवश्य थीं, किन्तु बहुत ही कम। इससे सिद्ध होता था कि वे इलैक्ट्रोनों की अपेक्षा बहुत भारी कण हैं। यह भी पता चला कि अल्फा कण हीलियम का एक ऐसा परमाणु था, जिसमें से दो इलैक्ट्रोन हटा दिये गये थे। यह भी एक बड़ा रहस्य था कि जब रेडियम का परमाणु खंड-खंड होकर बिखर रहा होता है, उस समय ये अल्फा किरणें किस प्रकार उत्पन्न होती हैं? क्योंकि प्रत्येक अल्फा के अन्दर दो इलैक्ट्रोन कम होते थे, इसलिए उसमें वस्तुतः दो धन विद्युत के प्रभार मौजूद रहते थे। किसी सामान्य परमाणु में से धन (+) और ऋण (—) विद्युत के सन्तुलित युगलों में से ऋण प्रभार का अलग कर लेना वैसा ही है, जैसा कि उसमें धन विद्युत के प्रभारों को जोड़ देना। अल्फा कण के लिए वैज्ञानिक संकेत या प्रतीक He^{++} है, जिसका अर्थ यह है कि अल्फा कण हीलियम तत्व का ऐसा परमाणु है, जिसमें बिजली के दो धन प्रभार भरे हैं। रसायनवेत्ताओं को जितने भी तत्व मालूम हैं, उनमें से हीलियम एक हाइड्रोजन को छोड़कर बाकी सबसे हल्का है।

रेडियम तथा अन्य लगभग १० भारी तत्वों के परमाणु

निरन्तर इलैक्ट्रोनों और अल्फा कणों को बाहर फेंकते रहते हैं। इन कणों की बहुत तीव्र गति को देखकर विज्ञानवेत्ताओं को पहले पहल यह संकेत मिला कि परमाणुओं के अन्दर कितनी विशाल मात्रा में ऊर्जा भरी होनी चाहिये। परमाणु के अन्दर खोज करने का प्रयत्न ठीक ऐसा ही है, जैसे कि कोई व्यक्ति किसी सन्दूक को यह समझकर खोले कि वह अन्दर से बिलकुल खाली होगा, और खोलने पर देखे कि उसके अन्दर तो अनेक बड़ी मनोरंजक और बहुमूल्य सामग्रियाँ भरी हुई हैं।

इन नयी खोजों के होने के बाद भी सभी चीजें अधिक और अधिक दुर्बोध होती जा रही थीं। परमाणु के अन्दर अल्फा और बीटा कणों के अतिरिक्त और क्या कुछ हो सकता है ? बाद में दो और कणों का पता चला। इनमें से एक कण प्रोटोन था। प्रोटोन हाइड्रोजन का ऐसा परमाणु था, जिसमें से एक इलैक्ट्रोन हटा दिया गया था। इसका वैज्ञानिक संकेत या प्रतीक H^+ है। दूसरा कण न्यूट्रोन था, जिसका भार लगभग ठीक उतना ही होता है, जितना कि प्रोटोन का होता है। परन्तु न्यूट्रोन में किसी प्रकार का बिजली का प्रभार नहीं होता। बिजली की दृष्टि से यह उदासीन होता है। यह भी पता चला कि अल्फा कण वस्तुतः दो प्रोटोनों और दो न्यूट्रोनों का एक गुच्छा होता है, जिसमें कि ये सब कण किसी कारण एक दूसरे के साथ मजबूती से चिपके होते हैं।

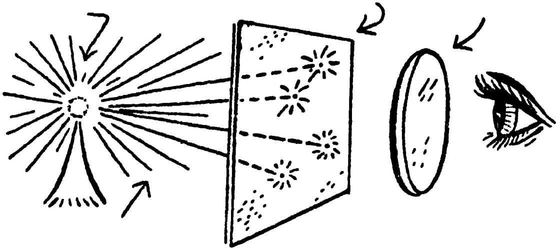
नीचे की तालिका में इन कणों के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य बतलाये गये हैं :

वे कण, जिनसे परमाणु बनता है

नाम	प्रतीक	भार	बिजली का प्रभार
		इलैक्ट्रोन का भार १ कहा जाता है	इलैक्ट्रोन का प्रभार—१ होता है
इलैक्ट्रोन	e	१	−१
प्रोटोन	H^+	१८३६	+१
न्यूट्रोन	n	१८३८	
अल्फाकण	He^{++}	७३००	+२

बीटाकण (रेडियो-सक्रिय परमाणु से बाहर निकलने वाले तीव्रगामी इलैक्ट्रोन)

रदरफोर्ड के साथी विज्ञानवेत्ताओं में से एक ने रेडियो-सक्रिय परमाणुओं के टूट-फूटकर बिखरने को ध्यान से देखने का एक बड़ा सरल और निपुण उपाय खोज निकाला था। उसने यह पता चला लिया कि जब कोई अल्फा कण टेलीविजन के पर्दे पर हुए लेप जैसे पदार्थ से आकर टकराता है, तो उससे प्रकाश की एक छोटी-सी चमक पैदा होती है। इस चीज को आप अपने घर पर भी होते हुए देख सकते हैं। यदि आपके घर में कोई ऐसी घड़ी हो, जिसके डायल पर रात में चमकने वाले अक्षर लिखे हुए हों, तो उसे एक बिलकुल अंधेरे कमरे में ले जाइये और कुछ मिनट तक उसी घड़ी की ओर ध्यान से देखिये। उसके बाद डायल पर लिखे हुए अंकों को किसी अच्छे शक्ति-शाली गुरुदर्शी ताल (लेंस) द्वारा देखिये। तब आपको निरन्तर



हर एक चमक अलफा कण के बाहर निकलने से उत्पन्न होती है।

दीख पड़नेवाली चमक के स्थान पर अनगिनत छोटे-छोटे टिम-टिमाते हुए प्रकाश-बिन्दु दिखायी पड़ेंगे। इनमें से प्रत्येक चमक इसलिए उत्पन्न होती है, क्योंकि रेडियम के परमाणुओं में से तेजी से निकलते हुए अलफा कण डायल पर लगे हुए लेप से आ टकराते हैं।

रदरफोर्ड ने इसी धारणा के आधार पर एक ऐसा यन्त्र बनाया, जो अलफा कणों की गिनती करता था। उसने रेडियो-सक्रिय पदार्थ का एक टुकड़ा लेप किये हुए एक शीशे के एक तरफ रखा और उस शीशे के दूसरी ओर उसने एक गुरु-दर्शी ताल लगा दिया। जब भी रेडियम का कोई परमाणु टूटता है, तभी उसमें से एक अलफा कण बाहर निकलता। इस प्रकार अलफा कणों की गिनती करने से उसे यह पता चल गया कि रेडियम किस चाल से टूट-फूटकर बिखर रहा है। रेडियम टूट-फूटकर बिखरने के बाद वस्तुतः लुप्त नहीं हो जाता, बल्कि एक और रासायनिक तत्व में परिवर्तित हो जाता है। यह नया

रासायनिक तत्व भी आगे टूट-फूटकर एक नये प्रकार के परमाणु में परिवर्तित हो जाता है और इसी प्रकार यह प्रक्रिया आगे चलती रहती है।

रदरफोर्ड की परीक्षणशाला में इस प्रकार के परिवर्तनों की जाँच-पड़ताल कई रेडियो-सक्रिय पदार्थों के सम्बन्ध में की गयी। इनमें से प्रत्येक मामले में, अनेक परिवर्तनों में से गुजरते हुए, कभी कोई अल्फा कण बाहर फेंकते हुए और कभी बीटा कण बाहर फेंकते हुए रेडियो-सक्रिय परमाणु अन्त में जाकर सीसे का परमाणु बन जाता था।

चमक गणक (फ्लैश काउण्टर) की सहायता से परीक्षणकर्ताओं ने यह पता चला लिया कि रेडियो-सक्रिय तत्व एक खास ढंग से टूटता-फूटता है। आपके पास रेडियो-सक्रिय तत्व जितनी अधिक मात्रा में होगा, उतनी ही अधिक तेजी से वह लुप्त होता जायेगा। कल्पना कीजिये कि शुरू में आपके पास कोई रेडियो-सक्रिय तत्व ठीक एक औंस विद्यमान है। कल्पना कीजिये कि एक घंटे बाद आपको यह मालूम होता है कि इसकी सक्रियता अब पहले की अपेक्षा केवल आधी रह गई है; जिसका अर्थ यह है कि तत्व की मात्रा अब पहले की अपेक्षा आधी रह गई है। अब इसके एक और घंटे बाद आप यह देखेंगे कि तत्व की मात्रा इसकी भी आधी अर्थात् मूल एक औंस की $\frac{१}{४}$ ही बाकी रह गयी है। अब एक घंटा और प्रतीक्षा कीजिये। तब आप देखेंगे कि केवल $\frac{१}{८}$ औंस बचा है। इसके बाद फिर एक घंटा प्रतीक्षा कीजिये तो केवल $\frac{१}{१६}$ औंस ही बाकी बचेगा; और यह प्रक्रिया इसी तरह चलती रहेगी।

प्रत्येक सक्रिय तत्व में टूटने-फूटने की प्रक्रिया इसी प्रकार चलती रहती है । वह पदार्थ निरन्तर खंडित होता रहता है; किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों-त्यों उसके खंडित होने की चाल धीमी और धीमी होती जाती है । एक ऐसे पेड़ की कल्पना कीजिये, जिसपर से पतझड़ में पत्ते झड़ने शुरू हुए हों। शुरू-शुरू में, जबकि सारी पत्तियाँ पेड़ के ऊपर होती हैं, प्रति मिनट बहुत-सी पत्तियाँ भूमि पर गिरती दिखायी पड़ती हैं । ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों-त्यों पेड़ के ऊपर शेष रही पत्तियों की संख्या कम और कम होती जाती है और इसीलिये प्रति मिनट नीचे गिरने वाली पत्तियों की संख्या भी घटती जाती है।

ऊपर रेखाचित्र में दिखाये गये उदाहरण में एक घंटा वह समय था, जो उस पदार्थ की आधी मात्रा के लुप्त होने में लगता था । समय की यह अवधि, अर्थात् जिसमें किसी रेडियो-सक्रिय तत्व की मात्रा खंडित होते-होते आधी रह जाती है, उस तत्व का अर्ध आयुष्य (हाफ लाइफ) कहलाती है । यह अर्ध आयुष्य कितना होगा, यह अलग-अलग तत्व पर निर्भर है । किसी तत्व का अर्ध आयुष्य एक सैकिण्ड का दस लाखवाँ भाग भी हो सकता है, और किसी अन्य तत्व का अर्ध आयुष्य १० अरब वर्ष से भी अधिक हो सकता है ।

रडियम का अर्ध आयुष्य लगभग १५६० वर्ष है । कल्पना कीजिये कि यदि किसी प्राचीन मिश्र के राजा ने ४७०० साल पहले, जब पिरामिड बनाये थे तब, पिरामिडों के अन्दर एक औंस रेडियम सीलबन्द करके रख दिया होता, तो क्या होता ? १५६०

वर्ष बाद उसमें से केवल आधा औंस रेडियम शेष होता। फिर उसके १५६० वर्ष बाद केवल एक चौथाई औंस रेडियम बचता। उसके भी १५६० वर्ष बाद, लगभग इस समय जिस समय हम रह रहे हैं, केवल $\frac{1}{8}$ औंस रेडियम शेष बचा होता।

हम चाहे जो करें, किन्तु उससे किसी भी रेडियो-सक्रिय पदार्थ के इस प्रकार खंडित होते जाने पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ता। रेडियो-सक्रिय पदार्थ को हम चाहे गर्म या ठंडा करें, उसके ऊपर प्रकाश डालें या उसे अँधेरे में रखें, या उसके अन्दर से बिजली की धारा गुजारें, इनमें से किसी भी कारण से उस पदार्थ के खंडित होते जाने या समाप्त होते जाने की चाल में जरा भी अंतर नहीं पड़ता। ऐसा मालूम होता है कि रेडियो-सक्रियता ही प्रकृति की बनायी हुई घड़ी है, जो संसार के प्रारम्भ काल से लेकर अबतक बिलकुल ठीक-ठीक ढंग से समय को नापती चली आ रही है।

और इसके साथ ही साथ, रेडियो-सक्रिय पदार्थों में से गामा किरणों के रूप में ऊर्जा बाहर निकलती है; और अल्फा तथा बीटा कणों के रूप में गतिक ऊर्जा बाहर निकलती है। केवल एक औंस रेडियम में से इतनी ऊर्जा बाहर निकलती है जितनी २८० मन पत्थर का कोयला जलाने से निकलती है। यह असली परमाणु ऊर्जा है; और विज्ञानवेत्ताओं को लगभग पचास वर्ष पहले इसका पता चल गया था। परन्तु रेडियम और दूसरे रेडियो-सक्रिय पदार्थ इतने दुर्लभ और स्वल्प मात्रा में थे कि कोई व्यक्ति इस प्रकार की ऊर्जा को व्यावहारिक उपयोग में लाने की कल्पना भी नहीं कर सकता था।

अध्याय | ७

परमाणुओं का मानचित्र कैसे बनाया गया ?

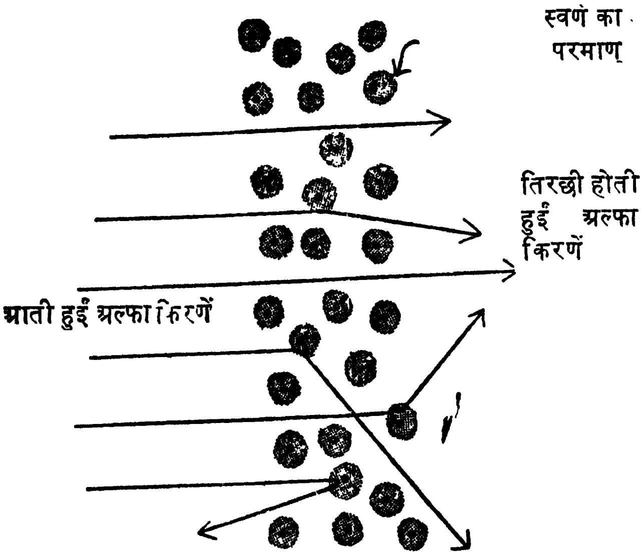
कल्पना कीजिये कि आपके पास एक बहुत बड़ा लकड़ी का छल्ला है। आप उसके ऊपर एक पतला कागज चिपका देते हैं और उसे अपने मकान के आँगन में खड़ा करके एक गेंद उस छल्ले पर मारते हैं। क्या होगा ? पहली ही गेंद, जो कागज से टकरायेगी, कागज को फाड़ती हुई छल्ले के पार निकल जायगी। अब छल्ले पर एक नया कागज चिपका दें और फिर उसी प्रकार गेंद फेंकें। जब भी आप गेंद फेंकेंगे और वह कागज से टकरायेगी, तो वह उसे फाड़ती हुई पार चली जायगी; और अगर आप बार-बार कागज चिपकाते जायें और गेंद फेंकते जायें, तो हर बार वह उसी तरह कागज को फाड़ती हुई पार जाती रहेगी। अब अन्त में जब इस खेल में आपकी रुचि समाप्त होती जा रही हो, तब आप शायद सोचें कि अच्छा चलो एक गेंद और फेंकते हैं। आप गेंद फेंकें, और देखें कि गेंद छल्ले की ओर चली जा रही है; और आप यह सोच ही रहे हों कि अब गेंद छल्ले से जाकर लगी और कागज फटने की आवाज आयी; परन्तु कल्पना कीजिये कि उस समय आपके मन की क्या हालत होगी, जबकि गेंद कागज से टकराकर पार न जाय, बल्कि उससे टकराकर, उछलकर फिर वापस आपकी ओर लौट आये ? आपके लिए इस बात पर विश्वास कर

पाना भी कठिन होगा। परन्तु जब रदरफोर्ड अपना नीचे लिखा हुआ महान परीक्षण कर रहा था, उस समय उसने देखा कि अल्फा कणों के साथ ठीक यही बात होती है।

उसके इस परीक्षण में गेंदों के स्थान पर अल्फा कण थे, जो रेडियम में से १० हजार मील प्रति सैकिंड की तेज चाल से निकलते थे। जहाँ आपने छल्ले पर कागज लगाया था, उसके स्थान पर सोने का एक बहुत पतला वर्क था, जो कागज से सौगुना पतला था। अधिकांश अल्फा कण सोने के वर्क के आर-पार बिलकुल सीधे निकल जाते थे। क्योंकि ये अल्फा कण बहुत छोटे होते थे, इसलिए सोने के वर्क के पार निकल जाने पर भी कोई ऐसा छेद नहीं होता था कि दिखायी पड़ सके। परन्तु कुछ अल्फा कण सोने के वर्क के पार होते हुए कुछ कम या अधिक तिरछे हो जाते थे; और कुछ थोड़े-से कण तो ठीक वापस उसी दिशा में भी लौट जाते थे, जिस दिशा से वे आये होते थे।

रदरफोर्ड के पास जितनी जानकारी थी, उसके द्वारा उसने यह अनुमान लगा लिया था कि अधिकांश अल्फा कणों को सोने की पतरी के आर-पार जाते हुए सोने के अलग-अलग परमाणुओं के बीच में से होकर नहीं बल्कि किसी न किसी एक परमाणु के अन्दर से गुजरकर पार जाना होता है। इसका अर्थ अनिवार्य रूप से यह था कि तीव्रगामी अल्फा कण की दृष्टि से परमाणु कोई बहुत ठोस वस्तु नहीं है, बल्कि उसके बीच-बीच में इतना काफी खुला स्थान है, जिसमें से तीव्रगामी कण आर-पार गुजर सकते हैं। रदरफोर्ड सोच में पड़ गया।

यह एक ऐसी बात थी, जो सुनने में वैज्ञानिक परीक्षण न होकर कुछ जादूगर का खेल-सी लगती थी। इस पहेली का केवल एक ही उत्तर उसे सूझ पड़ता था । ये अल्फा कण वस्तुतः धातु की पतरी के परमाणुओं से टकराकर इधर-उधर नहीं लौटते, बल्कि ये बिजली की शक्तियों के कारण या तो तिरछी दिशा में मुड़ जाते हैं, और या वापस लौट जाते हैं । आपको याद होगा कि अल्फा कण में धन विद्युत का प्रभार होता है । तब, अगर यह कल्पना की जाय कि परमाणु में, केन्द्र में धन विद्युत का



परमाणु के अन्दर बहुत-सा रिक्त स्थान होता है, जिसमें होकर सूक्ष्म कण गुजर सकते हैं ।

प्रभार होता है, तो इस सारी बात की व्याख्या बड़ी आसानी से हो जाती है; क्योंकि दो धन विद्युत के प्रभार एक दूसरे को परे धकेलते हैं। जो अल्फा कण केन्द्र से काफी दूरी से गुजरते हैं, उनकी दिशा केवल थोड़ी-सी तिरछी होती है; परन्तु जो अल्फा कण केन्द्र के बहुत पास पहुँच जाते हैं, उनकी दिशा या तो बहुत तिरछी हो जाती है, और या फिर वे उसी दिशा में लौट जाते हैं, जिससे वे आये थे।

पहले ७० पृष्ठ पर जिस चमक गणक का वर्णन किया है, उसके प्रयोग से यह बात ठीक-ठीक पता चल जाती थी कि कितने अल्फा कण तिरछे होकर अलग-अलग दिशाओं में गये। इन सब परिणामों से सारांश निकालकर रदरफोर्ड ने यह समझ लिया कि परमाणु का धन विद्युत के प्रभार वाला केन्द्र एक इंच के एक पद्मवें (दस लाख करोड़वें) भाग से अधिक बड़ा नहीं है। परमाणु का यह केन्द्रीय अंश उसका नाभिक (न्यूक्लियश) कहलाता है।

आपको यह याद होगा कि पूरा परमाणु लगभग एक इंच का दस करोड़वाँ भाग चौड़ा होता है। अब आप समझ सकते हैं कि परमाणु का नाभिक स्वयं परमाणु की अपेक्षा एक लाख गुना छोटा होता है। यदि किसी परमाणु को बड़ा करके फुट-बाल-स्टेडियम के बराबर बना दिया जाय, तो उसके अन्दर नाभिक केवल उतना बड़ा होगा, जितना कि फुटबाल के मैदान में बीच की लकीर पर बना हुआ वह गोल चक्कर होता है, जहाँ पर से शुरू-शुरू में फुटबाल को ठोकर मारी जाती है।

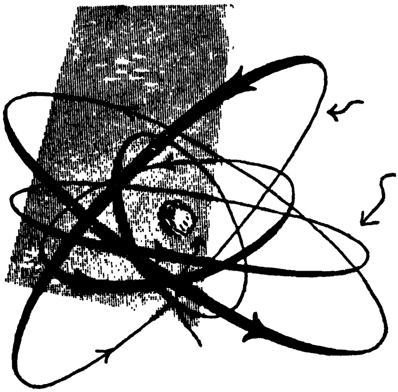
पूरा परमाणु बिजली की दृष्टि से उदासीन होना चाहिये;

इसलिये नाभिक के अन्दर विद्यमान धन विद्युत के प्रभार को सन्तुलित करने के लिए परमाणु में कही न कहीं किसी दूसरी जगह ऋण विद्युत के प्रभार वाले इलैक्ट्रोन भी समुचित संख्या में अवश्य होने चाहियें। और क्योंकि ऋण विद्युत के प्रभार वाले ये इलैक्ट्रोन धन विद्युत के प्रभारवाले नाभिक की ओर खिच-कर नहीं आ जाते, इसलिए रदरफोर्ड को यह कल्पना करनी पड़ी कि इलैक्ट्रोन नाभिक के चारों ओर उसी तरह बड़ी तेजी से चक्कर लगा रहे हैं, जैसे ग्रह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं, या बरसात की रातों में पतंगे दीपक के चारों ओर चक्कर काटते हैं। उस दशा में वह शक्ति, जो इलैक्ट्रोनों को केन्द्र से दूर उड़ते रहने के लिए प्रेरित करती रहती है, नाभिक के वैद्युतिक खिंचाव का संतुलन कर देती है; और इस तरह सारा काम ठीक-ठीक चलता रहता है।

इलैक्ट्रोन परमाणु के बाहरी भाग की रक्षा करते हैं। वे एक ढाल के रूप में रहते हैं और दूसरे परमाणुओं को नाभिक के बहुत पास तक आने से रोकते रहते हैं। केवल कोई बड़ी तेज और गहराई तक पार कर जानेवाली गोली, जैसे अल्फा कण, ही नामिक के पास तक पहुँच सकती है।

अब परमाणु की सामान्य रूपरेखा बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। परमाणु के केंद्र में एक भारी और कसा हुआ नाभिक होता है। नाभिक से बहुत दूर बाहर परमाणु की सीमा बनाती हुई तेजी से घूमते हुए इलैक्ट्रोनों की ढाल होती है। इस सीधे-सादे वर्णन से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जैसे सब रासायनिक तत्वों के परमाणु एक ही जैसे होते हों; पर यह बात सत्य नहीं है। प्रत्येक

परमाणु, चाहे वह किसी भी रासायनिक तत्व का क्यों न हो, इसी सामान्य ढंग पर बना होता है। परन्तु अलग-अलग तत्वों के

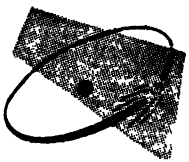


इलैक्ट्रोन परमाणु के केन्द्रीय नाभिक के चारों ओर तेजी से चक्कर लगाते रहते हैं।

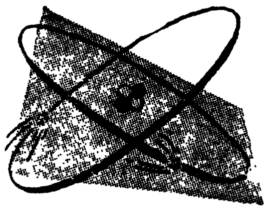
परमाणुओं में नाभिक में विद्यमान प्रोटोनों और न्यूट्रोनों तथा बाहर चक्कर लगाने वाले इलैक्ट्रोनों की संख्या अलग-अलग होती है।

अब हम कुछ उदाहरणों से इस बात को स्पष्ट करते हैं कि परमाणु कैसे बने होते हैं। हाइड्रोजन के, जो सबसे हल्का तत्व है, परमाणु में नाभिक के रूप में केवल एक प्रोटोन होता है। इस परमाणु में बाहर की ओर केवल एक इलैक्ट्रोन होता है, जैसा अगले चित्र में दिखाया गया है। यह सबसे सरल ढंग का

परमाणु है। इससे अधिक सरल परमाणु की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। हाइड्रोजन के बाद अगला भारी तत्व हीलियम है। रसायनवेत्ताओं ने यह पता चलाया है कि हीलियम का परमाणु हाइड्रोजन के परमाणु से चार गुना भारी होता है। इसका अर्थ निश्चित रूप से यह है कि हीलियम के परमाणु का नाभिक हाइड्रोजन के परमाणु के नाभिक से लगभग चार गुना भारी होता है, क्योंकि नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाने वाले इलैक्ट्रोनों का भार इतना कम होता है कि परमाणु के कुल भार को आंकने की दृष्टि से वह नगण्य होता है।



H
हाइड्रोजन



He
हीलियम

हीलियम का परमाणु (दायाँ) हाइड्रोजन के परमाणु (बायाँ) से लगभग चार गुना भारी होता है।

साथ ही यह बात भी मालूम हो चुकी है कि हीलियम के परमाणु से दो से अधिक इलैक्ट्रोन कभी भी अलग नहीं किये जा सकते हैं। इससे यह पता चलता है कि यदि नाभिक को दो बाहरी इलैक्ट्रोनों को अपनी ओर खींचे रखना हो, तो उसके

अन्दर दो धनात्मक प्रभार होने चाहियें। इस प्रकार का नाभिक चार प्रोटोनों या न्यूट्रोनों के बराबर भारी हो और साथ ही उसमें केवल दो धनात्मक प्रभार हों, यह तभी हो सकता है, जब वह दो प्रोटोनों और दो न्यूट्रोनों से मिलकर बना हो। इसलिए हीलियम के नाभिक में ठीक यही संयोग होना चाहिये।

अगला भारी परमाणु लिथियम है, जिसमें तीन बाहरी इलैक्ट्रोन होते हैं। इसका नाभिक प्रोटोन या न्यूट्रोन से सात गुना भारी होता है। यह प्रभार ठीक-ठीक तभी बना रह सकता है, जबकि नाभिक में तीन प्रोटोन हों। इन तीन प्रोटोनों के अलावा नाभिक के भार को पूरा करने के लिए जिन चार भारी कणों की आवश्यकता है, वे अवश्य ही न्यूट्रोन होंगे।

इस दिमागी खेल को इसी तरह आगे और आगे चलाते हुए भौतिकी शास्त्रियों ने अन्य परमाणुओं में से हर एक की ठीक-ठीक रूपरेखा तैयार कर ली। पृथ्वी पर पाया जानेवाला सबसे भारी और सबसे पेचीदा परमाणु यूरेनियम का है। यूरेनियम के परमाणु के नाभिक में ९२ प्रोटोन और १४६ न्यूट्रोन होते हैं और इस नाभिक के चारों ओर ९२ इलैक्ट्रोन तेजी से चक्कर लगा रहे होते हैं।

इस प्रकार भौतिकी शास्त्री रसायनवेत्ताओं के सामने प्रत्येक तत्व के परमाणु का एक चित्र या कम से कम एक मोटा नकशा प्रस्तुत करने में समर्थ हुए। परमाणु के अंगों के सम्बन्ध में बड़ी कठिनाइयों के बाद मालूम हुए इन तथ्यों से बहुत-सी बातों को समझना सरल हो गया। इससे पहले वैज्ञानिकों को ९० से भी अधिक अलग-अलग पदार्थों—तत्वों—से वास्ता रहता

था। जहाँ तक उन्हें मालूम था, प्रत्येक तत्व दूसरे तत्व से बिलकुल भिन्न ही वस्तु था। अब यह बात स्पष्ट हो गयी कि वस्तुतः केवल तीन प्रकार के अलग-अलग ढंग के कण—प्रोटोन, न्यूट्रोन और इलेक्ट्रोन—ही वे घटक हैं, जिनसे सब प्रकार के परमाणु बने हुए हैं। इससे अधिक सरल बात हमें चाहिये भी क्या?

अध्याय | ८

अन्दर की ओर अन्तर

विज्ञान के इतिहास में यह एक विशेष बात मालूम होती है कि ज्योंही कुछ समस्याएँ हल होती हैं, त्योंही ही दूसरी नयी समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। अभी रदरफोर्ड ने परमाणु के कुछ पहले थोड़े-से मोटे नकशों की रूपरेखाएँ तैयार ही की थीं, कि कुछ कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुईं।

पाँचवें अध्याय में हम टामसन के उन परीक्षणों के सम्बन्ध में पढ़ चुके हैं, जिनमें उसने एक वायुरहित नली में चुम्बक की सहायता से इलैक्ट्रोनों को एक ओर झुका पाने में सफलता प्राप्त की थी। इस पद्धति से इलैक्ट्रोनों का पता चलाने में सफल होने के बाद टामसन ने एक ऐसी वायुरहित नली बनाने का निश्चय किया, जिसमें वह इसी ढंग से धन प्रभार वाले परमाणुओं को दूसरी ओर झुका सके। इस प्रकार की नली में जो भी कोई गैस बाकी रहने दी जाती है, उसके परमाणुओं में से बहुत जोरदार, अधिक वोल्ट वाली बिजली द्वारा एक या एक से अधिक इलैक्ट्रोन झटके से अलग हो जाते हैं। इस प्रकार ये परमाणु ऐसे रह जाते हैं, जिनमें केवल धन विद्युत का प्रभार रहता है और इसलिए वे इलैक्ट्रोनों से उल्टी दिशा में हटने लगते हैं, और साथ ही साथ बिजली की धारा उन्हें आगे की ओर धकेल रही होती है। इस प्रकार बिजली की धारा के साथ-

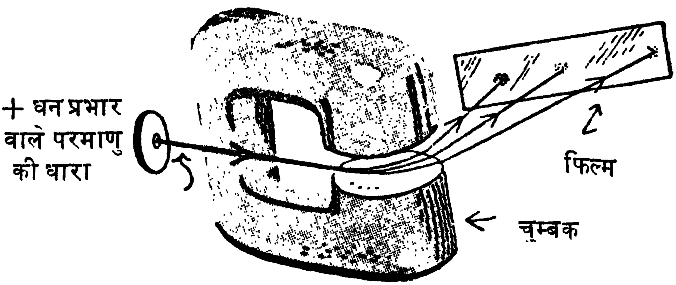
साथ आगे बढ़ते हुए ये धन प्रभार वाले परमाणु ऋण प्रभार वाले इलैक्ट्रोनों से अलग हो जाते हैं।

यह परीक्षण बहुत कुछ उसी ढंग का है, जैसा इलैक्ट्रोनों के साथ किया गया था। परन्तु इतना अन्तर अवश्य है कि इस परीक्षण में नली के अन्दर कई अलग-अलग तत्व होते हैं; और इस कारण अलग-अलग भार वाले, कई तरह के, प्रभार-युक्त परमाणु नली में होते हैं। ये सब परमाणु ठीक एक ही मार्ग पर आगे नहीं जाते, बल्कि भार की कमी या अधिकता के अनुसार वे कुछ कम या अधिक एक ओर को झुक जाते हैं। हल्के परमाणु कुछ अधिक एक ओर को झुकते हैं और भारी परमाणु उनकी अपेक्षा कुछ कम झुकते हैं।

नीचे के चित्र में यह दिखाया गया है कि यह सब किस तरह होता है। हरएक ढंग का परमाणु अलग-अलग मार्ग पर आगे बढ़ता है और अन्त में जाकर फोटो की एक फिल्म पर जाकर टकराता है। जहाँ यह परमाणु टकराता है, वहाँ फिल्म पर एक छोटा-सा धब्बा बन जाता है। इस धब्बे के स्थान को देखकर परीक्षण करने वाला उस परमाणु का ठीक-ठीक भार बतला सकता है, जिसके फिल्म पर आकर टकराने से यह धब्बा बना है। असल में यह सब एक इस प्रकार का प्रबन्ध है, जिससे अलग-अलग परमाणुओं को उनके भार के अनुसार अलग-अलग छाँटा जा सकता है।

इस सारी नयी व्यवस्था से टामसन ने जो पहले-पहले परीक्षण किये, उनमें एक परीक्षण था नियोन गैस के परमाणुओं का ठीक-ठीक भार जानने की कोशिश करना। ३६वें तथा ३७वें

पृष्ठों पर दी गयी रसायनवेत्ताओं की तालिका के अनुसार नियोन के परमाणु का भार २०.१८ होना चाहिये। परन्तु जब इस



हर प्रकार का परमाणु अलग-अलग मार्ग पर चलकर फिल्म तक पहुँचता है।

यन्त्र द्वारा ली गई फोटो की फिल्म को धोया गया, तो उसपर दो धब्बे मिले। एक धब्बा २० पर था और दूसरा कुछ धुँधला २२ पर। टामसन ने सोचा कि अवश्य ही नियोन के परमाणु दो प्रकार के होने चाहियें, जिनमें से एक ढंग के परमाणुओं का भार २० होता होगा और दूसरे ढंग के परमाणुओं का २२। हमें अपने आसपास जो भी नियोन गैस प्राप्त होती है, वह इन दोनों प्रकार के परमाणुओं का मिश्रण है, जिसमें परमाणुओं का औसत भार २०.१८ होता है। रासायनिक दृष्टि से नियोन के ये दोनों प्रकार के परमाणु बिलकुल एक जैसा व्यवहार करते हैं; और ऐसा कोई तरीका नहीं है, जिससे उन दोनों में कोई भेद किया जा सके। परन्तु टामसन ने जिस तरह का परमाणुओं के अलग-अलग छाँटने का यन्त्र बनाया, उसके

द्वारा उन्हें अलग-अलग किया जा सकता है, क्योंकि उनके भार में मामूली-सा अन्तर है।

इस नयी चौंकानेवाली खोज के बाद टामसन ने अपनी प्रयोगशाला के लोगों को आदेश दिया कि वे सभी रासायनिक तत्वों के परमाणुओं को इस दृष्टि से परीक्षा करने में पूरी तरह जुट जायें कि उनमें से भी तो कोई अलग-अलग भार वाले परमाणुओं के मिश्रण तो नहीं है। उन्हीं दिनों प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया और अधिकांश विज्ञानवेत्ताओं को अपना नियमित काम छोड़कर दूसरे कामों में जुट जाना पड़ा।

पाँच साल बाद कहीं जाकर इन परीक्षणों को फिर शुरू किया जा सका। टामसन के एक शिष्य ने एक और अच्छा सुधरा हुआ परमाणुओं को अलग-अलग छाँटने का यन्त्र बनाया और यह पता चलाया कि और बहुत-से तत्वों में भी अलग-अलग भार वाले परमाणु मौजूद हैं। अमरीकन भौतिकी शास्त्रियों ने और ऐसे अनेक तत्व खोज निकाले, जिनमें अलग-अलग भार वाले परमाणु थे; और इस समय हमें यह मालूम है कि जितने तत्व हमें ज्ञात हैं, उनमें से तीन चौथाई से भी अधिक तत्व २ से लेकर १० तक अलग-अलग भार वाले परमाणुओं के मिश्रण हैं। किसी एक ही तत्व के अलग-अलग प्रकार के अलग-अलग भार वाले परमाणु उस तत्व के 'आइसोटोप' कहलाते हैं। अब तक कुल मिलाकर एक हजार से भी अधिक आइसोटोपों का पता चलाया जा चुका है।

आइसोटोपों की खोज हो जाने के बाद मामला एक बार फिर बहुत पेचीदा दीख पड़ने लगा। यह ठीक है कि रसायन-

वेत्ताओं की दृष्टि से इस समय भी केवल लगभग ६० प्रकार के परमाणु थे, परन्तु भौतिकी शास्त्रियों के सामने तो एक हजार से भी अधिक अलग-अगल ढंग के परमाणु आ खड़े हुए थे। और अब इन आइसोटोपों को परमाणुओं के उस नक्शे में यथा-स्थान रखा जाना था, जो इस समय तक तैयार किया जा चुका था। यदि हमें यह मालूम हो कि कोई परमाणु किस प्रकार का है, और उसका भार कितना है, तो यह बता सकना सम्भव है कि वह परमाणु किस प्रकार बना हुआ है। क्योंकि किसी भी एक तत्व के सब परमाणु रासायनिक दृष्टि से एक समान होते हैं, इसलिए हमें यह मालूम है कि उस तत्व के सब आइसोटोपों में बाहरी इलैक्ट्रोनों की संख्या अवश्य ही समान होनी चाहिये। परन्तु फिर भी भार में अन्तर होने का अर्थ यह है कि उनके नाभिकों में कुछ अन्तर है। यह सम्भव है कि इलैक्ट्रोनों—और प्रोटोनों—की संख्या उतनी ही रहे, और फिर भी अपेक्षाकृत भारी परमाणु तैयार कर लिया जाय। इसका तरीका यह है कि नाभिक में एक या एक से अधिक न्यूट्रोन मिला दिये जायँ। उस दशा में दोनों परमाणुओं में इलैक्ट्रोनों और प्रोटोनों की संख्या तो एक जैसी होगी, परन्तु उनका भार अलग-अलग होगा।

इस बात को भली भाँति समझने के लिए यह कल्पना कीजिये कि तत्वों के परमाणु आमों की तरह हैं। आम अनेक प्रकार के होते हैं—लँगड़ा, दसहरी, सफेदा, फजली इत्यादि। सब आम देखने में आम जैसे ही होते हैं और बहुत कुछ एक जैसे होते हैं; परन्तु यदि आप उन्हें काटें तो देखेंगे कि किसी-

में गुठली छोटी है और किसीमें गुठली बड़ी। या इसी तरह अमरूदों के उदाहरण को लें, तो आप देखेंगे कि ऊपर से देखने में तो सभी अमरूद लगभग एक जैसे होते हैं, परन्तु उन्हें काटने पर किसीमें बहुत कम बीज दीख पड़ते हैं, और किसीमें बहुत अधिक बीज होते हैं। यही हाल तत्वों का भी है। किसी भी एक तत्व के सब परमाणुओं में इलैक्ट्रोनों का बाहरी खोल तो एक जैसा ही होता है, परन्तु प्रत्येक अलग-अलग आइ-सोटोप में नाभिक में विद्यमान कणों की संख्या अलग-अलग होती है।

नियोग के दो आइसोटोपों में यह भेद किस प्रकार होता है, यह नीचे दिये चित्र से स्पष्ट हो जाता है। इस तत्व के परमाणु के बाहरी खोल में सदा दस ही इलैक्ट्रोन होते हैं और इन दस इलैक्ट्रोनों के कारण ही यह नियोन तत्व होता है, कोई अन्य तत्व नहीं। यदि इलैक्ट्रोनों की संख्या नौ या ग्यारह हो जाय, तो वह परमाणु नियोन तत्व का न होकर किसी अन्य तत्व का बन जायगा। बाहर के खोल में दस इलैक्ट्रोनों के होने का अर्थ यह है कि उनके प्रभार को सन्तुलित करने के लिए नाभिक में दस प्रोटोन होने चाहियें। दस प्रोटोनों का भार दस इकाई होता है, इसलिए 'नियोग २०' के नाभिक का भार पूरा करने के लिए उसके अन्दर दस न्यूट्रोन और होने चाहियें। परन्तु 'नियोन २२' के भार को पूरा करने के लिए न्यूट्रोनों की संख्या दस नहीं, बल्कि बारह होनी चाहिये।

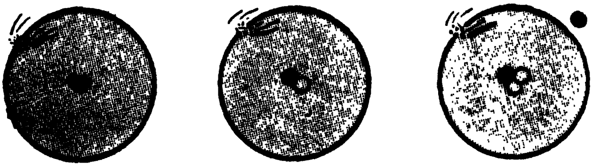
हाइड्रोजन का परमाणु, जो सबसे सादा परमाणु है, भी तीन अलग रूपों में प्राप्त होता है; अर्थात् हाइड्रोजन के भी

तीन आइसोटोप हैं। मामूली हाइड्रोजन के परमाणु में नाभिक में केवल एक प्रोटोन होता है और उसके चारों ओर बाहर की ओर एक इलैक्ट्रोन चक्कर लगा रहा होता है। विज्ञानवेत्ताओं को यह सन्देह हुआ कि शायद हाइड्रोजन का एक और भी आइसोटोप हो, जो हाइड्रोजन से लगभग दुगना भारी हो। उन्होंने बड़े सूक्ष्म परमाणुओं को छाँटने वाले यन्त्रों से इसकी खोज की, परन्तु उन्हें इस भारी हाइड्रोजन के आइसोटोप का कोई चिह्न न मिल सका। इसलिए उन्होंने यह समझा कि हाइड्रोजन का यह भारी आइसोटोप शायद बहुत ही विरल मात्रा में पाया जाता हो। अब ऐसा क्या उपाय किया जाय, जिससे इसकी मात्रा इतनी बढ़ाई जा सके कि यह स्पष्ट दिखाई पड़ सके ?

अमरीकन विज्ञानवेत्ताओं ने इसके लिए एक उपाय सोच निकाला। सामान्य दशा में हाइड्रोजन गैस के रूप में पायी जाती है, परन्तु यदि हम इसे ठंडा करते जायें, तो शून्य बिन्दु से भी ४२३ तापांश नीचे जाकर हाइड्रोजन गैस द्रव के रूप में बदल जाती है। विज्ञानवेत्ताओं ने लगभग एक गैलन हाइड्रोजन का यह बहुत ही शीतल द्रव तैयार किया। उसके बाद उन्होंने उस द्रव को धीरे-धीरे वाष्प बनकर उड़ने दिया। उनका खयाल था कि यदि हाइड्रोजन के सामान्य परमाणुओं के अतिरिक्त कुछ और भी भारी परमाणु होते होंगे, तो जब यह द्रव हाइड्रोजन उड़ते-उड़ते थोड़ी-सी बच जायगी, तब उसमें वे भारी परमाणु काफी बड़ी संख्या में बचे रह जायेंगे।

जब उस एक गैलन द्रव हाइड्रोजन में से बिलकुल जरा-सा

अंश बाकी बच गया, तब उसे परमाणुओं को अलग-अलग छाँटने वाले यन्त्र में रखा गया। तब इसमें हाइड्रोजन के सामान्य परमाणुओं के अतिरिक्त कुछ थोड़े-से भारी हाइड्रोजन के परमाणु भी पाये गये। नीचे दिये इस चित्र में यह बात स्पष्ट की गयी



हा १ साधारण हाइड्रोजन — हा २ भारी हाइड्रोजन — हा ३ सबसे भारी हाइड्रोजन

है कि इस आइसोटोप की रचना किस प्रकार की होती है। तुम देख सकते हो कि भारी हाइड्रोजन का परमाणु ठीक सामान्य हाइड्रोजन के परमाणु जैसा ही होता है; परन्तु इतना अन्तर अवश्य होता है कि उसके नाभिक में एक प्रोटोन के अतिरिक्त एक न्यूट्रोन भी रहता है। हाइड्रोजन के हर १४००० परमाणुओं में से केवल एक परमाणु भारी हाइड्रोजन का होता है।

अभी कुछ ही वर्ष पहले एक तिगुने भार वाले हाइड्रोजन के आइसोटोप का भी पता चला है। सारी पृथ्वी पर इस आइसोटोप की मात्रा एक सेर से भी कम होगी। इतना ही नहीं; यह आइसोटोप हाइड्रोजन के अन्य दो आइसोटोपों की भाँति स्थायी नहीं है, बल्कि यह रेडियो-सक्रिय है; और इसका अर्ध आयुष्य लगभग १२ साल का है।

क्या आपने कभी 'भारी पानी' का नाम सुना है? ध्यान

रखिये कि पानी का अणु हाइड्रोजन के दो परमाणुओं और आक्सीजन के एक परमाणु के मेल से बना होता है। सामान्य पानी में जहाँ-तहाँ कोई एक ऐसा अणु होता है, जिसमें हाइड्रोजन का सामान्य परमाणु न मिला होकर दुगने भारवाला परमाणु मिला होता है। ऐसे उपाय खोज लिये गये हैं, जिनके द्वारा पानी के ऐसे अणुओं को एक जगह एकत्र किया जा सकता है। इस तरह का पानी 'भारी पानी' कहलाता है। इस भारी पानी के एक गैलन का भार सामान्य पानी के एक गैलन की अपेक्षा लगभग आधा सेर अधिक होता है। परमाणु बम तैयार करने में 'भारी पानी' का भी काफी महत्वपूर्ण उपयोग रहा।

अध्याय | ९

परमाणु को तोड़ने की कोशिश

उस दिन मौसम कुछ भला नहीं था। रदरफोर्ड अपनी प्रयोगशाला में मेज़ के सामने कुर्सी पर सिकुड़ा हुआ विचार-मग्न बैठा था। यह १९१७ की बात है। उस समय उसके अधिकांश सूझ-बूझ वाले युवक शिष्य युद्ध में भाग लेने गये हुए थे। यह महान भौतिकी शास्त्री गत वर्षों में किये गये परीक्षणों के बारे में सोच रहा था और सोच रहा था कि उसकी प्रयोगशाला पिछले दिनों कितनी व्यस्त रही और उसमें कितना उपयोगी काम किया गया। वह यह भी सोच रहा था कि उसने और उसके सहकारियों ने परमाणुओं के सम्बन्ध में कितनी बातें खोज निकाली थीं।

परन्तु एक बात उसे बहुत परेशान कर रही थी। जितना कुछ मालूम हो चुका था, उसके बाद भी कोई व्यक्ति ऐसा उपाय नहीं ढूंढ़ पाया था, जिससे एक प्रकार के परमाणु को दूसरे प्रकार के परमाणु में बदला जा सके। वैसे यह बात न जाने कितने युगों से रेडियो-सक्रियता के रूप में प्रकृति में निरन्तर हो रही है। रेडियम जैसे तत्वों के परमाणु निरन्तर बदलते रहते हैं और रदरफोर्ड स्वयं भी उन लोगों में से था, जिन्होंने सर्वप्रथम इस बात का पता चलाया कि रेडियम जैसे तत्वों के परमाणुओं में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं।

परन्तु अब वह अधीर होता जा रहा था। 'यदि प्रकृति किसी परमाणु के नाभिक को बदल सकती है, तो हम अपनी प्रयोगशाला में उसे क्यों नहीं बदल सकते ?' उसने सोचा। उसे मालूम था कि आधुनिक विज्ञान के प्रारम्भ होने से बहुत समय पहले से ही कुछ लोग, जो अपने आपको 'कीमियागर' कहते थे, यह समझते थे कि लोहे को सोना बनाने का कोई न कोई उपाय अवश्य ढूंढ़ा जा सकता है। हालाँकि उन लोगों का प्रयत्न सैकड़ों सालों तक चलता रहा, परन्तु कोई भी व्यक्ति इस प्रकार किसी और धातु से सोने का एक जरा-सा कण तक बनाने में कभी सफल न हुआ। परन्तु तब से लेकर अब तक वस्तुओं के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान बहुत बढ़ चुका है। इस समय विज्ञान को अणुओं, परमाणुओं और उनके भी अंगों का ज्ञान हो चुका था, इसलिए परमाणुओं को बदल डालने में सफलता प्राप्त करने के अवसर इस समय पहले की अपेक्षा कहीं अधिक थे।

दुबला-पतला रदरफोर्ड अपनी कुर्सी से उठा और चलकर प्रयोगशाला के एक कोने में रखी हुई बड़ी आलमारी के पास पहुँचा। 'शायद परमाणु नाभिक को बदलने का सबसे अच्छा प्रयत्न इस प्रकार किया जा सकता है कि उस परमाणु पर प्रकृति की अपनी बनायी हुई प्रचंड शक्तिशाली गोलियों की चोट की जाय!' उसने मन ही मन सोचा। 'यह रेडियम—सी. की एक डली है, जिसमें से अल्फा कण तीव्रगति से बाहर निकलते हैं; और अब—अच्छा मैं देखता हूँ—ठीक है। यह चमक गणक है। अब अगर मैं रेडियम—सी. को एक शीशे की नली में

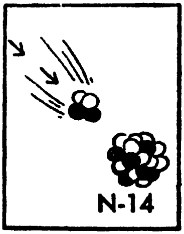
रखूं...'

इसके आगे शायद ऐसा लगता हो कि हरएक बात बिना किसी कठिनाई के बिलकुल ठीक-ठीक होती चली गयी होगी। परन्तु ऐसा आसान धन्धा तो केवल किस्से-कहानियों में ही हुआ करता है। वस्तुतः रदरफोर्ड को अनेक बार अनेक निराशाओं का सामना करना पड़ा; और कई महीने बीत गये, तब कहीं जाकर उसके हाथ वह चीज लगी, जिसकी खोज में वह था। परन्तु जब उसे वह चीज मिल गयी, तो उसे यह पता चल गया कि उसने एक ऐसा काम कर दिखाया है, जो उससे पहले कभी किसी मनुष्य ने नहीं किया था। वह परमाणु के नाभिक को तोड़ पाने में सफल हो गया था।

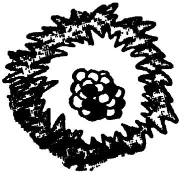
अपने इस परीक्षण में उसने रेडियो-सक्रिय पदार्थ को एक शीशे की नली में रखा। उसके बाद उसने चमक गणक को शीशे की नली के बाहर इतनी दूर पर रखा, जहाँ तक अल्फा कण नहीं पहुँच सकते थे। इसके बाद उसने शीशे की नली में रेडियम—सी. के पास एक के बाद एक कई गैसों को रखा; परन्तु इससे तब तक कुछ भी नहीं हुआ, जब तक कि उसने नाइट्रोजन गैस का प्रयोग नहीं किया। परन्तु जब नाइट्रोजन गैस रेडियम—सी. के पास शीशे की नली में रखी गयी, तो एकाएक चमक गणक में चमक दिखायी पड़नी शुरू हो गयी, और चमक गणक को नली से एक फुट तक दूर रखने पर भी उसमें चमक दिखायी पड़ती रही। इसका अर्थ यह था कि शीशे की नली में से कुछ कण बड़ी तेजी से बाहर की ओर निकल रहे हैं, जो अल्फा कणों की अपेक्षा पांच या छह गुना अधिक दूर तक जा सकते

हैं। रदरफोर्ड ने यह पता चला लिया कि ये कण प्रोटोन थे।

जो कुछ हुआ वह यह था कि एक अल्फा कण जाकर नाइ-ट्रोजन के नाभिक से टकराया; परन्तु उससे टकराकर दूर छिटक जाने के बजाय वह उस नाभिक में ही चिपक गया।



एक अल्फा कण ना—१४ के नाभिक की ओर बढ़ रहा है।



...और वे दोनों आपस में मिल जाते हैं, परन्तु केवल इसलिए...



...जिससे उनमें से एक प्रोटोन तेजी से छिटक-कर बाहर की ओर निकले और एक ओ—१७ का नाभिक तैयार हो जाय।

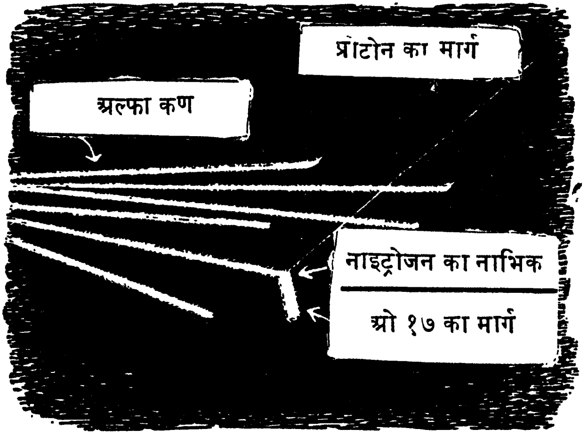
उसके इस तरह टकराने से नाभिक के अन्दर जो उथल-पुथल हुई, वह इतनी काफी थी कि वह एक प्रोटोन को बाहर की ओर दूर फेंक दे। इस एक प्रोटोन के निकल जाने के बाद जो कुछ शेष रह गया, वह आक्सीजन का एक आइसोटोप था, जिसे ओ १७ कहा जाता है। यह सब एक बेस-बाल के ऐसे खेल जैसी बात हुई, जिसमें कि कोई एक शरारती खिलाड़ी किसी उछलती हुई गेंद को लपककर पकड़ ले और उसे अपनी जेब

में डालकर उसके बजाय एक टेनिस की गेंद खेल के मैदान में फेंक दे।

जब यह सब कुछ खत्म हो चुकता है, तब यह नया नाभिक अपने लायक काफी इलैक्ट्रोन अपनी ओर खींचकर अपने आपको उन इलैक्ट्रोनों से घेर लेता है—कुछ न कुछ इलैक्ट्रोन सदा आसपास रहते ही हैं—ताकि वह ओ १७ का पूरा परमाणु बन सके।

रदरफोर्ड की इस खोज के बाद दूसरे परीक्षणकर्ताओं ने मेघ प्रकोष्ठ (क्लाउड चेम्बर) के उपयोग द्वारा और भी कई बातें खोज निकालीं। मेघ प्रकोष्ठ एक ऐसा यन्त्र होता है, जिसके द्वारा आते हुए अल्फा कणों के मार्ग को, तेजी से छिटककर दूर जाते हुए प्रोटोन के मार्ग को, और यहाँ तक कि जब यह नया नाभिक धक्का खाकर एक दूसरी ओर को जा पड़ता है, तब उसके भी मार्ग को देख पाना सम्भव होता है। तुम्हें मालूम है कि कभी-कभी जब विमान बहुत ऊँचाई पर उड़ते हैं, तो उनके पीछे धूम की लम्बी रेखाएँ आकाश में बन जाती हैं। ये रेखाएँ इसलिए बन जाती हैं, क्योंकि जब विमान आगे गुजर जाता है, तो उसके छोड़े हुए धूम की सील जमकर घनी हो जाती है। ठीक इसी तरह तीव्रगामी परमाणु कण भी जब मेघ प्रकोष्ठ की सीली वायु में से गुजरते हैं, तो वे जिस मार्ग पर जाते हैं, उसपर इसी प्रकार की रेखाएँ छोड़ते जाते हैं। इन पीछे छूटी हुई रेखाओं के रंग-ढंग से भौतिकी शास्त्री आम तौर से यह बता सकते हैं कि वे रेखाएँ किस प्रकार के कणों के गुजरने से बनी हैं; और यह भी कि वे कण कितनी तेज चाल से गति कर रहे थे।

आगे दिये गये चित्र में यह दिखाया गया है कि जब कोई अल्फा कण सौभाग्य से किसी नाइट्रोजन के नाभिक से टकराता है—क्योंकि तीन लाख बार प्रयत्न करने पर एक बार ऐसा सुअवसर प्राप्त होता है—तब मेघ प्रकोष्ठ में कैसा कुछ दिखायी पड़ता है। बायीं ओर से आने वाली रेखाएँ वे हैं, जो अल्फा कणों के



जब कोई अल्फा कण नाइट्रोजन के नाभिक से टकराता है, तब ऐसा होता है।

गुजरने से बनी हैं। इन अल्फा कणों में से एक जाकर नाइट्रोजन के नाभिक से जा टकराया है; और उसके कारण एक प्रोटोन बाहर की ओर छिटक गया है, जो दायीं ओर ऊपर की ओर एक लम्बी पतली रेखा बनाता गया है। नया ओ १७ का नाभिक धक्का खाकर एक ओर जा पड़ा है, जिसके कारण मोटी भारी-सी लकीर बन गयी है।

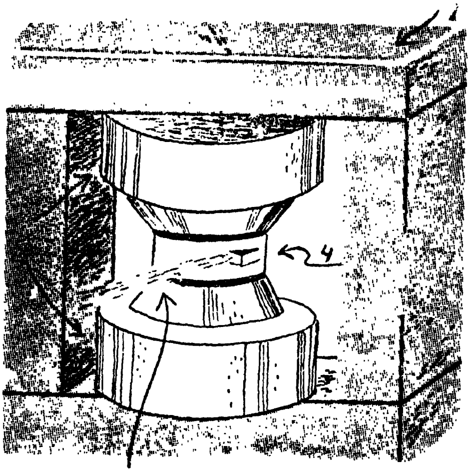
जब विज्ञानवेत्ताओं ने यह पता चला लिया कि जब कोई प्राकृतिक अल्फा कण जाकर किसी नाभिक से टकराता है, तो उस नाभिक में परिवर्तन हो जाता है, तब उन्होंने अगली कोशिश यह की कि वे खुद ऐसी तीव्रगामी गोलियाँ तैयार करें, जिनके द्वारा परमाणु के नाभिक पर चोट की जा सके। वे इस कारण बहुत अधीर थे कि अल्फा कण बहुत कम बार जाकर नाभिक से टकरा पाते थे; और वे विज्ञानवेत्ता सब काम बहुत जल्दी-जल्दी कर डालना चाहते थे। रदरफोर्ड की प्रयोगशाला के दो विज्ञानवेत्ताओं ने एक बिजली की मशीन बनायी जिसमें हाइड्रोजन के नाभिकों—प्रोटोनों—को एक बहुत बड़े नल में से इस ढंग से तेजी से दौड़ाया जाता था कि उनकी चाल प्रति सैकिंड तीन हजार मील से भी अधिक हो जाती थी। जब इन प्रोटोनों को किसी तत्व के परमाणुओं पर टकराने दिया जाता था, तो उन परमाणुओं के नाभिकों में परिवर्तन हो जाता था। इस प्रकार अब से लगभग २५ वर्ष पहले 'परमाणुओं को फोड़ने का' यह विज्ञान प्रारम्भ हुआ।

इसके बाद प्रगति तेजी से हुई। दूसरी प्रयोगशालाओं में भौतिकी शास्त्रियों ने परमाणुओं के कणों को अधिक और अधिक ऊर्जा देने के कई नये और अच्छे ढंग खोज निकाले। इस प्रकार ये तीव्रगामी परमाणु कण नाभिकों पर चोट करने वाली गोलियों का काम करने लगे। कल्पना करें कि आप एक पत्थर को बहुत तेजी से फेंकना चाहते हैं; इतनी तेजी से कि आप खाली अपने हाथ से उसे उतनी तेजी से नहीं फेंक सकते। उस दशा में आप यह करेंगे कि उस पत्थर को एक गोफिये में रखकर उसे खूब

तेजी से घुमायेंगे, और जब उसकी चाल खूब तेज हो जायगी तब गोफिये की एक डोर छोड़ देंगे; और इससे पत्थर उसकी अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से और कहीं अधिक दूर तक जायेगा, जितना कि खाली हाथ से फेंकने से जाता।

इसी विचार के अनुसार काम करते हुए कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में विज्ञानवेत्ताओं ने एक यन्त्र बनाया, जिसका नाम 'साइक्लोट्रोन' था। इससे पहले के यन्त्रों में प्रोटोनों को एक नल में तेजी से दौड़ाया जाता था; उसके बजाय इस 'साइक्लोट्रोन' में परमाणु कणों या प्रोटोनों को एक गोल चक्कर में बार-बार तेजी से घुमाया जाता है; और हर चक्कर में उनकी गति बढ़ाने के लिए उन्हें बिजली के हल्के-हल्के झटके दिये जाते हैं। लगभग दस लाख चक्कर लगा लेने के बाद इन कणों की गतिक ऊर्जा इतनी प्रचंड हो जाती है कि जब वे किसी लक्ष्य से जाकर टकराते हैं, तो उसके नाभिक में परिवर्तन कर देते हैं।

ये नाभिक कण या प्रोटोन ठीक ढंग से गोलाकार मार्ग में ही दौड़ते रहें, इसकी व्यवस्था एक विशाल मुड़े हुए चुम्बक के द्वारा की जाती है। इस चुम्बक के प्रभाव से नाभिक कण एक खास मार्ग पर ही दौड़ते हैं, उससे हटकर इधर-उधर नहीं जाते। अभी हाल में ही जो एक नया साइक्लोट्रोन बना है, उसमें केवल चुम्बक का भार ही चार हजार टन, अर्थात् ११२००० मन है। इस यन्त्र में प्रोटोनों को केवल कुछ हजार वोल्ट की बिजली से धक्के दिये जाते हैं, परन्तु उतनी बिजली से ही प्रोटोनों को इतनी ऊर्जा मिल जाती है, जितनी बिना इस मशीन के उन्हें ३५ करोड़ बोल्ट की बिजली से मिल पाती।



साइक्लोट्रोन यन्त्र में नाभिक के कण तेजी से एक चक्कर में घुमाये जा रहे हैं।

भौतिक शास्त्री 'वोल्ट' शब्द का प्रयोग तीव्रगामी कणों की ऊर्जा को बतलाने के लिए करते हैं। वे कहते हैं कि 'कैली-फोनिया का साइक्लोट्रोन यन्त्र ३५ करोड़ वोल्ट के प्रोटोनों की धार फेंकता है।' असल में, यदि इस प्रकार के ३५ करोड़ वोल्ट की ऊर्जा से भागते हुए २० हजार प्रोटोन इकट्ठे किये जायँ, तब कहीं जाकर उनकी गतिक ऊर्जा एक उड़ते हुए मच्छर की गतिक ऊर्जा के बराबर हो सकेगी। परन्तु यह न भूलना चाहिये कि प्रोटोन मच्छर की अपेक्षा ५०० अरब अरब हल्का होता है। इस प्रकार लाखों वोल्ट की ऊर्जा से भरे हुए कण परमाणु के नाभिक में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में कणों को और अधिक ऊर्जा देने के लिए बनायी गयी मशीनों में और बहुत-से सुधार किये गये हैं। क्योंकि चुम्बक का बीच का भाग अनावश्यक होता है, इसलिए अपेक्षाकृत नयी बनायी गयी मशीनों में उस भाग को छोड़ दिया गया है; और अब नये ढंग के चुम्बक एक विशाल अंगूठी की आकृति के बनाये गये हैं। इस प्रकार की सबसे बड़ी मशीनों में से एक मशीन का नाम 'कोस्मोट्रोन' है; और यह मशीन न्यूयार्क शहर के पास ब्रुकहेवन की "परमाणु अनुसन्धान प्रयोगशाला' में स्थित है। इस 'कोस्मोट्रोन' के विशाल चुम्बक के घेरे का व्यास ७५ फीट है; अर्थात् अंगूठी की आकृति का यह चुम्बक इतना बड़ा है कि यदि इसे सीधा पार करें, तो वह दूरी ७५ फीट होगी। इस घेरे के चारों ओर दस फीट मोटी कंक-रीट की दीवारें हैं। ये दीवारें परीक्षण करने वाले विज्ञान-वेत्ताओं को घातक 'ऐक्स किरणों' से बचाने के लिए बनायी गयी हैं। जब कणों को बहुत तेजी से गोल चक्कर में घुमाया जाता है, उस समय ये घातक 'ऐक्स किरणें' पैदा होती हैं।

'कोस्मोट्रोन' मशीन का प्रयोग इस तरह किया जाता है। कुछ कणों अर्थात् प्रोटोनों या न्यूट्रोनों को इस मशीन के अन्दर छोड़ दिया जाता है और उन्हें उनके मार्ग पर तेजी से धकेल दिया जाता है। एक सैकिंड में वे कण उस विशाल घेरे के लग-भग ४० लाख चक्कर लगा लेते हैं। इस प्रकार एक सैकिंड में वे कुल जितना रास्ता तय करते हैं, वह उससे भी कहीं अधिक होता है, जितनी दूर यहाँ से चन्द्रमा है। इतने चक्कर लगा चुकने के बाद उन कणों में लगभग २½ अरब वोल्ट की ऊर्जा

भर चुकी होती है। इसके बाद उन्हें लक्ष्य के ऊपर चोट करने के लिए छोड़ा जाता है। यह सारी कार्रवाई पाँच सैकिंड में पूरी हो जाती है और उसके बाद इसे नये सिरे से दुहराया जा सकता है।

'कोस्मोट्रोन' से थोड़ी-सी ही दूर पर एक और नयी तथा अधिक शक्तिशाली परमाणुओं को फोड़ने वाली मशीन तैयार की जा रही है। इसका शास्त्रीय नाम काफी लम्बा है। वह है 'एकान्तरिक प्रवणता सीन्कोट्रोन' (आल्टरनेटिंग ग्रैडियैन्ट सीन्कोट्रोन)। इस मशीन में कणों की दौड़ का मार्ग अंडाकृति होगा और वह अंडाकृति ७०० फीट लम्बी होगी—इतनी बड़ी कि उसके अन्दर फुटबाल के दो मैदान आसानी से समा जायें। इस सारी मशीन को बनाने में लगभग १० करोड़ रुपये की लागत आयेगी। यह मशीन प्रोटोनों को २५ अरब वोल्ट की ऊर्जा दे सकेगी। काश, कि रदरफोर्ड परमाणुओं को फोड़ने की इस नवीनतम मशीन को देख पाता! रदरफोर्ड ने तो परमाणुओं को फोड़ने के लिए अपनी सबसे पहली मशीन लकड़ी की खाली पेटियों और टीन के कनस्तरों से ही बनायी थी।

ये विशालकाय मशीनें परमाणुओं के नाभिकों को फोड़ने के अतिरिक्त और भी कई अद्भुत कार्य कर सकती हैं। यदि ऊर्जा पर्याप्त अधिक हो, तो एक बिल्कुल नये प्रकार के कण उत्पन्न हो जाते हैं, जो 'मेसोन' कहलाते हैं। ये 'मेसोन' कण पहले पहल कास्मिक किरणों में पाये गये थे। कास्मिक किरणें वे विचित्र और रहस्यमयी किरणें हैं, जो बाहरी व्योम (स्पेस) से पृथ्वी पर आती हैं। ब्रुकहेवन की मशीन का नाम 'कास्मोट्रोन'

इसीलिए रखा गया, क्योंकि वह मेसोन कण उत्पन्न कर सकती थी। भौतिकी शास्त्री फोटो की फिल्मों और मेघ प्रकोष्ठों की सहायता से मेसोन कणों की छान-बीन कर रहे हैं और उनके सम्बन्ध में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

इस प्रकार की सब बड़ी-बड़ी मशीनें केवल परमाणुओं को फोड़ने के ही काम नहीं लायी जा रहीं। इनमें से कुछ मशीनें इलैक्ट्रोनों को तीव्र गति देने के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। जब बहुत तीव्र गति से जाते हुए इलैक्ट्रोनों को—जो वस्तुतः बीटा किरणें हैं—किसी धातु के टुकड़े से टकराने दिया जाता है, तो उस धातु में से बड़ी शक्तिशाली और पारगामी 'ऐक्स किरणें' उत्पन्न होती हैं। इस ढंग की एक मशीन का नाम 'बीटाट्रोन' है। इस बीटाट्रोन में से निकलने वाली 'ऐक्स किरणें' इतनी शक्तिशाली होती हैं कि वे एक गज मोटी फौलाद की दीवार के पार भी आसानी से जा सकती हैं। इस प्रकार की मशीनों का उपयोग कैन्सर या अर्बुद के रोगियों की चिकित्सा के लिए किया जा रहा है। इस मशीन से निकलनेवाली 'ऐक्स किरणें' रेडियम से निकलने वाली किरणों की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली होती हैं।

अध्याय | १०

दूर गहराई में जो कुछ होता है

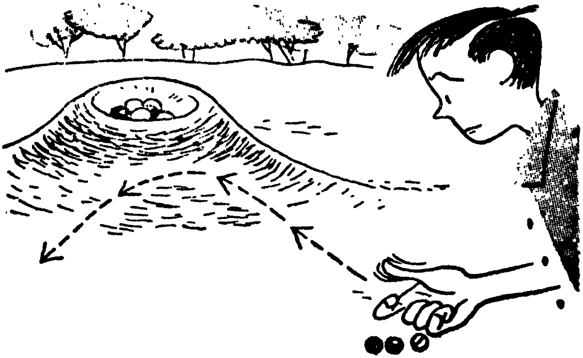
पिछले अध्याय में हमने जिन विशालकाय मशीनों का वर्णन किया है, वे दिन-प्रतिदिन परमाणु नाभिक के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान में अधिक और अधिक वृद्धि कर रही है। तीव्रगामी कणों का गोलियों के रूप में उपयोग करके भौतिकी शास्त्रियों ने यह पता चला लिया कि सब परमाणुओं के नाभिक प्रोटोनों और न्यूट्रोनों से मिलकर बने हुए हैं। इसका अपवाद केवल हाइड्रोजन का वह परमाणु है, जिसका भार एक इकाई होता है। उसके नाभिक में एक भी न्यूट्रोन नहीं होता। ये सब प्रोटोन और न्यूट्रोन इतने थोड़े-से स्थान में एक दूसरे के साथ चिपके होते हैं, कि वह एक इंच के एक लाखवें भाग का एक करोड़वाँ भाग चौड़ा नहीं होता। इस बात को रदरफोर्ड ने लगभग ५० वर्ष पहले खोज निकाला था।

परन्तु विज्ञानवेत्ता नाभिक के सम्बन्ध में और गहराई तक जाँच-पड़ताल करना चाहते थे। नाभिक का आकार कितना बड़ा होता है, और उसके अन्दर क्या-क्या चीजें होती हैं, इसकी अपेक्षा वे कुछ और अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते थे। वे यह जानना चाहते थे कि आखिर नाभिक के अन्दर विद्यमान ये प्रोटोन एक दूसरे के साथ चिपके किस प्रकार रह पाते हैं। मोटे तौर पर तो यह बात समझ आती है कि नाभिक में विद्य-

मान प्रोटोनों को एक दूसरे को परे धकेलना चाहिये, क्योंकि सभी प्रोटोनों में एक ही प्रकार का धन विद्युत का प्रभार होता है। ऐसी दशा में तो परमाणु के किसी भी नाभिक के लिए समूचा और इकट्ठा रह पाना असम्भव होना चाहिये। परन्तु ये सब प्रोटोन इकट्ठे रहते हैं, और नाभिक एक बना रहता है; इससे स्पष्ट है कि कोई और ऐसी शक्ति होनी चाहिये, जो इन प्रोटोनों के एक दूसरे को परे हटाने की प्रवृत्ति के ऊपर विजय पा सके। आज तक भी भौतिकी शास्त्रियों को यह बात ठीक-ठीक तौर पर नहीं मालूम कि यह विचित्र रहस्यपूर्ण शक्ति क्या हो सकती है। इस सम्बन्ध में अधिक बुद्धिसंगत अनुमान यह लगाया गया है कि न्यूट्रोन प्रोटोनों को एक साथ चिपकाये रखने के लिये एक प्रकार की गोंद का-सा काम करते हैं, जिसके कारण प्रोटोनों का एक पूरा गुच्छा का गुच्छा इकट्ठा चिपका रह सकता है।

परमाणु के नाभिक के सम्बन्ध में कुछ और ठीक-ठीक सही धारणा बनाने के लिए हमें यह कल्पना करनी चाहिये कि यह नाभिक ज्वालामुखी पर्वत के मुख की तरह होता है। आप जानते हैं कि ज्वालामुखी पर्वत का मुख एक ऊँची पहाड़ी के रूप में होता है, और इस पहाड़ी के सबसे ऊपरी सिरे में एक गड्ढा होता है। कई बार लड़के शीशे की गोलियों से एक खेल खेला करते हैं, जिसमें गोलियाँ जमीन में बने हुए एक गड्ढे की ओर इस तरह लुढ़कायी जाती हैं कि वे गड्ढे के अन्दर जा पड़ें। अब आप कल्पना कीजिये कि आपने एक ऐसा गड्ढा कुछ ऊँचाई पर बनाया है और उसके चारों ओर की जमीन ढलुआँ होती चली गयी है। अब आप एक गोली जोर

से इस ऊँचे टीले की ओर लुढ़कायें। यदि यह गोली टीले के

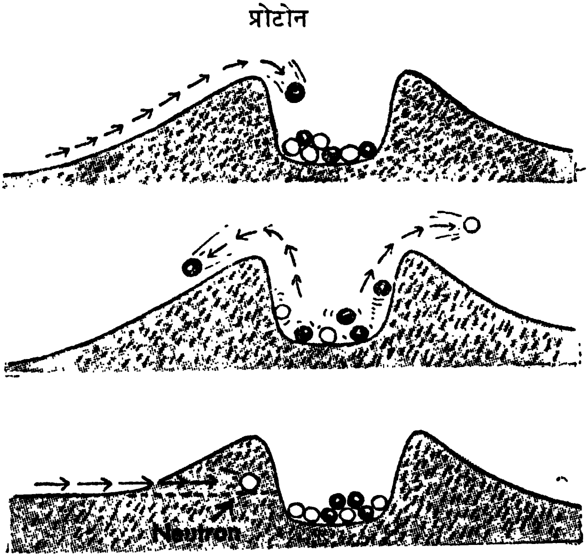


आमतौर से गोली गड्ढे तक न पहुँचकर एक ओर से नीचे को लौट आयेगी।

सिरे पर बने हुए गड्ढे तक न पहुँची, तो वह टीले के ऊपर की ओर कुछ दूर तक जायेगी और उसके बाद बीच में से ही दूसरी दिशा में लुढ़क जायेगी, जैसा कि ऊपर दिये गये चित्र में दिखाया गया है। काफी दूर से देखने पर ऐसा प्रतीत होगा कि वह गोली मानो नाभिक—ऊपर बने हुए गड्ढे—से जाकर टकरायी है और फिर वापस लौट आयी है। यह ठीक ऐसा ही है, जैसा कि रदरफोर्ड के सोने की पतरी वाले प्रसिद्ध परीक्षणों में अल्फा कणों के टकराने पर होता दिखायी पड़ा था।

अब कल्पना करें कि आप एक और शीशे की गोली इस तरह से फेंकते हों कि वह सीधे टीले के ऊपर बने हुए गड्ढे में जा पड़े। यदि इस गोली में पर्याप्त ऊर्जा होगी, तो यह टीले के ऊपर की ओर लुढ़कती चली जायगी; और बिलकुल ऊपरी

सिरे पर पहुँचकर गड्ढे के अन्दर 'धप' से जा पड़ेगी। बिलकुल ठीक ऐसा ही तब होता है, जबकि परमाणु के नाभिक में कोई दूसरा परमाणु कण जाकर टकराता है। जब शीशे की गोली गड्ढे में जाकर गिरती है, तो अगर उस गड्ढे में पहले से और कई गोलियाँ पड़ी हुई हों, तो वह उन सबको हिला-जुला देती है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि इस प्रकार आकर गिरने वाली गोली काफी जोर से आकर गिरती है, और गड्ढे में इतनी हलचल होती है कि उसमें पहले से पड़ी हुई



प्रभार युक्त कण टीले के ऊपर होकर ही गड्ढे के अन्दर तक पहुँच सकते ह, परन्तु न्यूट्रोन, जो प्रभार रहित होता है, टीले की दीवार को पार करता हुआ ही गड्ढे तक पहुँच जाता है।

एक या एक से अधिक गोलियाँ गड्ढे से बाहर जा पड़ती हैं। जब कोई तीव्रगामी कण परमाणु के नाभिक से जाकर टकराता है, तो ठीक यही होता है। ऐसी दशा में बहुत बार ऐसा हो सकता है कि नाभिक में पहले से विद्यमान कोई कण अर्थात् प्रोटोन या न्यूट्रोन छिटककर अलग जा पड़े।

इस गड्ढे के नमूने से ही यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि जब परमाणु के नाभिक में इस प्रकार के परिवर्तन होते हैं, तो उसमें से गामा किरणें क्यों निकलती हैं। ये किरणें नाभिक के कणों में उथल-पुथल होने के कारण ठीक उसी ढंग से निकलती हैं, जिस प्रकार गड्ढे में पड़ी हुई गोलियों से किसी और गोली के आ टकराने के कारण ध्वनि की तरंगें उत्पन्न होती हैं।

जब कोई न्यूट्रोन किसी नाभिक की ओर जाता है, तब हालत इससे कुछ अलग होती है। क्योंकि न्यूट्रोन में बिजली का किसी प्रकार का प्रभार नहीं होता, इसलिए प्रभारयुक्त नाभिक न्यूट्रोन को परे नहीं धकेलता; और इसीलिए न्यूट्रोन को टीले पर चढ़कर गड्ढे तक पहुँचने की मशक्कत नहीं करनी पड़ती। इसके लिए आप यह कल्पना कर सकते हैं कि मानो न्यूट्रोन टीले की ऊँची दीवार को ठीक बीच में से पार करता हुआ गड्ढे के अन्दर तक पहुँच जाता है; और उसे टीले के ऊपर चढ़कर गड्ढे तक पहुँचने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु प्रभार-युक्त कणों को आमतौर से या तो टीले के ऊपर चढ़ने के बाद गड्ढे के अन्दर तक पहुँचना होता है, और या फिर वे कभी गड्ढे तक पहुँच ही नहीं पाते।

इसी ज्वालामुखी के मुख अर्थात् टीले के ऊपर बने हुए

गड्ढे के उदाहरण को सामने रखते हुए परीक्षणकर्ता अपनी बड़ी-बड़ी परमाणुओं को फोड़ने वाली मशीनों से परीक्षण करने में जुट गये और उन्होंने नाभिकों में एक हजार से भी अधिक अलग-अलग तरह के परिवर्तन करने के उपाय खोज निकाले। प्राचीन काल के कीमियागरों के स्वप्न को आधुनिक विज्ञान ने वस्तुतः सच बनाकर दिखा दिया है। इस समय इच्छानुसार सोने के परमाणु भी तैयार किये जा सकते हैं; किन्तु इस प्रकार के परमाणु अभी तक भी चाहे जितनी मात्रा में तैयार नहीं किये जा सकते। नये-नये परमाणु बनाने का कोई और अधिक अच्छा तरीका खोज निकालना अभी शेष है।

एक ओर जहाँ यह सारा काम चल रहा था, वहाँ दूसरी ओर परीक्षणकर्ता अलग-अलग आइसोटोपों के भार का ठीक-ठीक नाप करने में जुटे थे। उन्होंने इतने प्रयत्न के बाद जो परिणाम निकाले, वे संसार में किसी भी समय हुए नाप-तोलों की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म और सही हैं; क्योंकि अब यह मालूम हो गया है कि आइसोटोपों के अथवा तत्वों के परमाणुओं के जो भार उन्होंने मालूम किये हैं, उनमें दस लाखवें अंश की भी कमी वा अधिकता नहीं है। वे तोल बिलकुल ठीक हैं। यह चीज ऐसी ही आश्चर्यजनक है, जैसे कि कोई व्यक्ति किसी बड़ी मोटरगाड़ी के ऊपर किसी मक्खी के बैठ जाने पर उस मोटरगाड़ी के भार में हुए अन्तर को ठीक-ठीक बतला सके।

नाभिकों के सम्बन्ध में कुछ परीक्षण करते हुए एक अजीब बात देखने में आई। जब नाभिक पर चोट करने वाले तीव्रगामी कण, और जिस नाभिक पर चोट की गयी थी, उस नाभिक के

कुल भार का सर्वयोग किया गया, तो वह सदा ठीक उतना ही नहीं होता था, जितना कि इस टक्कर के बाद बचे हुए परमाणु के कणों का कुल भार होता था। इस टक्कर के समय हुए परिवर्तन में भार कभी या तो कम हो जाता था और या कभी बढ़ जाता था। परन्तु यह रहस्य बहुत शीघ्र ही स्पष्ट हो गया। क्योंकि इस बात की व्याख्या लगभग पचास वर्ष पहले, जबकि किसीने परमाणु के नाभिक में परिवर्तन करने का सपना भी नहीं लिया था, अलबर्ट आइन्स्टीन ने कर दी थी।

उस समय आइन्स्टीन स्विटजरलैंड के पेटेन्ट आफिस में लिपिक (क्लर्क) का काम करता था। उसकी आयु तब केवल २६ वर्ष थी। स्थान और काल के सम्बन्ध में वह अपनी उन नयी धारणाओंपर विचार करना प्रारम्भ कर रहा था, जो बाद में समस्त संसार में 'सापेक्षता के सिद्धान्त' के रूप में प्रसिद्ध हुईं। आइन्स्टीन ने अपनी गणनाओं द्वारा जो अनेक आश्चर्यजनक परिणाम निकाले, उनमें से एक यह था कि किसी भी वस्तु का भार सदा एक जैसा नहीं रहता; बल्कि वस्तु का भार इस बात पर निर्भर करता है कि वह कितनी तेजी से गति कर रही है। यह बात हमारी इस नित्यप्रति की धारणा से बहुत भिन्न थी कि किसी भी वस्तु का भार हर हालत में एक जितना ही रहता है; जैसे किसी एक बड़े पत्थर का भार, जब भी तोलो ठीक एक जितना ही निकलेगा। परन्तु आइन्स्टीन ने गणना करके यह बताया कि जो वस्तु जितनी तीव्र गति से गति कर रही होगी, उसका भार उतना ही अधिक बढ़ जायगा।

मामूली चाल की गतियों में यह अन्तर इतना कम होता

होता है कि इसे नाप पाना भी सम्भव नहीं होता। उदाहरण के लिए, अगर कोई ६०० मन का भारी विमान ४०० मील प्रति घंटे की चाल से उड़े, तो उड़ती दशा में उसका भार स्थिर खड़े होने की दशा की अपेक्षा एक छटाँक का करोड़वाँ भाग अधिक हो जायगा; परन्तु जब कोई वस्तु प्रकाश के जितने वेग से गति करती है—प्रकाश का वेग १८६००० मील प्रति सैकिंड है—तब उस चीज के भार में होने वाली वृद्धि बहुत अधिक होती है। परमाणु के कण प्रकाश के जितने वेग से गति कर सकते हैं, और इसलिए उनके भार में होने वाली वृद्धि वैसी ही होती है, जैसे आइन्स्टीन ने गणना करके बतायी थी। उदाहरण के लिए यदि किसी इलैक्ट्रोन को वायु रहित नली में ३० लाख वोल्ट की ऊर्जा से आगे की ओर फेंका जाय, तो उसकी चाल प्रकाश की चाल की तुलना में ९९ प्रतिशत के लगभग होगी; अर्थात् प्रकाश की चाल और इलैक्ट्रोन की चाल में उतना ही अन्तर रहेगा, जितना १०० और ९९ में है। इलैक्ट्रोन की चाल लगभग प्रकाश की चाल के बराबर ही होगी। उतनी तेजी से गति करते हुए इलैक्ट्रोन का भार सामान्य दशा की अपेक्षा ६ गुना अधिक होगा।

सापेक्षता का सिद्धान्त हमें एक और बात भी बतलाता है, जो और भी अधिक चौंकाने वाली है। इससे इस बात की व्याख्या हो जाती है कि आखिर सारी परमाणु शक्ति आती कहाँ से है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में आपने पढ़ा था कि हम किसी भी वस्तु को ऊर्जा दे सकते हैं; और जिस वस्तु को ऐसी ऊर्जा दी गयी हो, उससे ऊर्जा वापस लेकर हम अपने लिए काम

करवा सकते हैं। सापेक्षता का सिद्धान्त इसमें इतनी नयी बात और जोड़ देता है कि पदार्थ (मैटर) को ऊर्जा में बदला जा सकता है और ऊर्जा को फिर पदार्थ के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि कुछ खास दशाओं में किसी चीज का कुछ भाग लुप्त हो जा सकता है और उसके स्थान पर ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है। इसी बात का यदि विलोम कहा जाय, तो कहा जा सकता है कि ऊर्जा को जमा-कर पदार्थ के रूप में बदला जा सकता है। यह सारी बात एक



डाक्टर अलबर्ट आइन्स्टीन ने अपना प्रसिद्ध गुर ऊ=प. प्र.वे^{2} ($E=mc^2$) तैयार किया।

छोटे-से अंक गणितीय गुर में कही गयी है, जो आजकल हमें समाचारपत्रों तक में पढ़ने को मिल जाता है। यह गुर निम्न-लिखित है :

$$ऊ = प.\ प्र.वे^2$$

इसे इस प्रकार पढ़ा जायगा : 'ऊ समान है प.प्र. वे. का वर्ग'। इसमें ऊ का अर्थ है ऊर्जा; प का अर्थ है पदार्थ की वह मात्रा जो प्रकट होती है या लुप्त होती है; और प्र. वे. का अर्थ है प्रकाश का वेग। यह प्रकाश का वेग बहुत बड़ी संख्या है और इसका अर्थ है कि यदि पदार्थ की बहुत स्वल्प-सी मात्रा को भी किसी प्रकार लुप्त किया जा सके, तो उससे ऊर्जा की बहुत बड़ी मात्रा उत्पन्न होगी। उदाहरण के लिए हम इस पदार्थ की ऊर्जा की मात्रा का अनुमान इस प्रकार कर सकते हैं कि हम यह सोचें कि पानी की एक बूंद से कितनी ऊर्जा उत्पन्न हो सकेगी। यदि हम पानी की एक बूंद को ऊर्जा के रूप में बदल सकें, तो वह ऊर्जा इतनी काफी होगी कि एक बड़े चार इंजिन वाले विमान को सारी पृथ्वी के चारों ओर पाँच चक्कर कटवा सके।

परन्तु यदि हम उस ऊर्जा को मुक्त कर सकें, तभी—परन्तु क्या हम उसे मुक्त कर सकते हुं? इस समय इसका उत्तर है—'अंशतः'। जब भी परमाणु के नाभिक में कोई परिवर्तन होता है, तब इस प्रकार की कुछ न कुछ ऊर्जा मुक्त होती है।

जब परमाणुओं को अलग-अलग छाँटनेवाले यन्त्र के द्वारा विभिन्न परमाणुओं के भार ठीक-ठीक मालूम हो गये, तब विज्ञानवेत्ता पदार्थ और ऊर्जा के आपसी सम्बन्ध की जाँच-पड़ताल कर पाने में समर्थ हुए। उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी मशीनों से तीव्रगामी कणों को लिया और उन्हें मेघ प्रकोष्ठ के अन्दर फेंका, जहाँ वे आसानी से अपनी आँखों से यह देख सकते थे कि जब कोई तीव्रगामी कण परमाणु के नाभिक से टकराता है,

तब क्या कुछ होता है। वाष्प के अन्दर बननेवाली रेखाओं से उन्हें यह पता चल जाता था कि प्रत्येक कण टक्कर होने से पहले और टक्कर होने के बाद कितनी तेजी से गति कर रहा था और कर रहा है। गोली के रूप में फेंके गये तीव्रगामी परमाणु कण की टकराने से पहले की गतिक ऊर्जा को, टकराने के बाद बचे हुए टुकड़ों की कुल गतिक ऊर्जा के साथ मिलाकर यह देखा जा सकता था कि इस टक्कर से गतिक ऊर्जा कम हुई, या अधिक हो गयी।

कभी-कभी ऊर्जा में निश्चित रूप से वृद्धि हुई होती थी। यही वस्तुतः परमाणु ऊर्जा थी। परन्तु यह ऊर्जा आखिर आयी कहाँ से ? जब उन्होंने टक्कर के बाद बचे हुए सब कणों की पड़ताल की, तो उन्होंने देखा कि कुल भार में बहुत थोड़ी-सी कमी हो गई है। वह अतिरिक्त ऊर्जा वस्तुतः यहीं से आई थी—पदार्थ ऊर्जा के रूप में परिवर्तित हो गया था। जब इस पदार्थ की मात्रा और ऊर्जा का हिसाब लगाया गया, तो वह ठीक उतना ही निकला, जितना आइन्स्टीन के गुर के अनुसार निकलना चाहिये था।

कुछ परीक्षणों में कुल ऊर्जा में कुछ थोड़ी-सी कमी हुई दिखायी पड़ी; परन्तु ऐसे सब मामलों में बचे हुए कणों के भार में कुछ न कुछ वृद्धि हुई होती थी, जिसके कारण गुर का हिसाब फिर ठीक बैठ जाता था। इस प्रकार के बीसियों परीक्षणों और नाप-जोखों से यह सिद्ध हो गया कि आइन्स्टीन की धारणा बिलकुल ठीक थी। उसने यह सिद्ध कर दिया था कि पदार्थ का भार या पदार्थ की ऊर्जा सदा एक जैसे नहीं रहते; अपितु

भार और ऊर्जा, दोनों का सर्वयोग मिलकर सदा एक जैसा रहता है।

एक बात अब भी बड़ी निराशाजनक थी। इतनी सब बड़ी-बड़ी मशीनों की सहायता के बाद भी विज्ञानवेत्ता परमाणु के नाभिक से जो कुछ ऊर्जा प्राप्त कर सके थे, वह इतनी कम थी कि ऐसा प्रतीत होता था कि इस ऊर्जा का कभी भी कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं किया जा सकेगा। अब से कुछ वर्ष पहले तक भी ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे प्रकृति ने मनुष्य के आगे बढ़ने की सीमा रेखा इस स्थान तक ही खींची हुई थी। परमाणु की ऊर्जा एक ताले में बन्द मूल्यवान खजाने की तरह थी। हम उस खजाने को देखकर चकित तो हो सकते थे, किन्तु उसका उपयोग नहीं कर सकते थे। इसके बाद कुछ और बड़ी-बड़ी खोजें हुईं, जिनसे वे उपाय निकल आये, जिनके द्वारा इस खजाने का उपयोग किया जा सकता था। इन खोजों के फल-स्वरूप हम आज के परमाणु युग में आ खड़े हुए।

अध्याय | ११

परमाणु का विखंडन

जब साइक्लोट्रोन जैसी विशालकाय मशीनें भी तीव्र तथा तीव्रतर प्रभारयुक्त कणों द्वारा परमाणु के नाभिक पर चोट करके पर्याप्त ऊर्जा निकाल पाने में असमर्थ रहीं, तो इस प्रकार की ऊर्जा को निकालने के लिए और क्या किया जा सकता था ?

इसका उत्तर था कि प्रोटोनों के स्थान पर गोली के रूप में न्यूट्रोनों का प्रयोग करके देखा जाय। क्योंकि न्यूट्रोन में किसी प्रकार का विद्युत का प्रभार नहीं होता, इसलिए वह नाभिक तक 'ऊँचे टीले' पर चढ़ने की मशक्कत किये बिना ही पहुँच सकता है। आश्चर्यजनक बात यह थी कि मन्द गति से ाने वाले न्यूट्रोन तीव्र गति से जाने वाले न्यूट्रोनों की अपेक्षा कहीं अधिक कारगर सिद्ध हुए। न्यूट्रोनों की चाल को इस प्रकार धीमा किया जा सकता है कि उन्हें पैराफीन, कार्बन या किसी अन्य ऐसे पदार्थ में से गुजारा जाय, जिसमें हल्के भार वाले बहुत-से परमाणु भरे हों। इस प्रकार दूसरे परमाणुओं के बीच में से टकराकर आगे बढ़ते हुए न्यूट्रोनों की ऊर्जा ठीक उसी प्रकार कम हो जाती है, जैसे कोई तेज चलने वाला आदमी बहुत अधिक भीड़ में तेजी से नहीं चल सकता।

रोम के विश्वविद्यालय में एक परीक्षणकर्ता था, जिसका नाम था एनरिको फर्मी। उसके मन में यह आया कि यह देखा

जाय कि यदि मन्द गति से चलते हुए न्यूट्रोन यूरेनियम से टकरायें, तब क्या होगा। उस समय यूरेनियम का परमाणु ज्ञात तत्वों में सबसे भारी परमाणु था। फर्मी का विचार था कि यदि यूरेनियम के नाभिक में किसी प्रकार एक और न्यूट्रोन चिपकाया जा सके, तो सम्भव है कि कोई यूरेनियम से भारी परमाणु तैयार हो जाय।

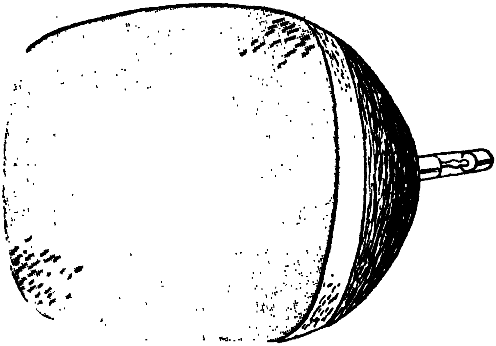
उसने इस सम्बन्ध में बार-बार परीक्षण किये। इन परीक्षणों के परिणाम बड़े उलझन में डालने वाले और परेशान करने वाले थे; फिर भी वे परीक्षण इस योग्य जान पड़े कि उनको आगे जारी रखा जाय! इस प्रकार के और बहुत-से परीक्षण दूसरी प्रयोगशालाओं में भी किये गये। जर्मन विज्ञानवेत्ताओं ने यह पता चलाया कि जब यह परीक्षण समाप्त हो चुकता है, अर्थात् न्यूट्रोन यूरेनियम के नाभिक से जाकर टकरा चुकता है, तब बेरियम के परमाणु बाकी बच रहते हैं। इस परिणाम से पहेली और भी अधिक उलझ गयी। बेरियम एक मध्यम भार वाला परमाणु है, जिसका भार यूरेनियम की अपेक्षा लगभग आधा होता है। इस बेरियम के परमाणु का यहाँ क्या काम था? क्या यह सम्भव था कि यह यूरेनियम के नाभिक के दो हिस्सों में फट जाने से बन गया हो? इससे पहले जितने भी परिवर्तन नाभिक में होते देखे गये थे, उन सबमें नाभिकों के भार में केवल दो-चार संख्याओं का ही अन्तर पड़ता था; परन्तु इस परीक्षण में तो भार में हुआ अन्तर १०० के लगभग था। यदि वस्तुतः यही बात हुई हो कि यूरेनियम परमाणु के दो समान भागों में फट जाने से बेरियम उत्पन्न हुआ हो तो, इसका अर्थ यह था कि यह अब तक हुआ नाभिक का

सबसे बड़ा विखंडन था; अर्थात् नाभिक का जितना बड़ा हिस्सा इस परीक्षण में तोड़ा जा सका था, उतना इससे पहले कभी नहीं तोड़ा गया था। रदरफोर्ड इस घटना को नहीं देख पाया, क्योंकि उसकी मृत्यु इससे एक वर्ष पहले ही हो चुकी थी।

ये १९३९ के वर्ष के प्रारम्भिक दिन थे। हिटलर जर्मनी में पदारूढ़ हो चुका था और अनेक जर्मन विज्ञानवेत्ताओं को जर्मनी छोड़कर भागने के लिए विवश होना पड़ा था। इस प्रकार जो विज्ञानवेत्ता जर्मनी से आये थे, उनमें से ही कुछ लोग यूरेनियम के परमाणु के फटने की सूचना लेकर डैनमार्क में कोपनहेगन की इन्स्टीट्यूट आफ थ्योरिटिकल फिजिक्स (सैद्धान्तिक भौतिकी प्रतिष्ठान) तक ले गये। इस प्रतिष्ठान का अध्यक्ष प्रोफेसर नोऐल्स बोहर कुछ समस्याओं के बारे में आइन्स्टीन से विचार-विमर्श करने के लिए अमरीका जाने वाला था। जब बोहर ने अमेरिकन भौतिकी शास्त्रियों को यह खबर सुनायी कि उसके जर्मन मित्रों ने यह पता चला लिया है कि न्यूट्रोन द्वारा यूरेनियम के नाभिक को फोड़ने से बेरियम उत्पन्न होता है, तो वहाँ काफी दिलचस्पी और सनसनी रही।

न्यूयार्क और कैलिफोर्निया में परीक्षण करने वालों ने इस बात को पड़ताल की और इस तथ्य की पुष्टि की कि सचसुच ही यूरेनियम के परमाणु ठीक उसी तरह फटते हैं, जैसा कि जर्मन विज्ञानवेत्ता समझते थे। इंगलैंड और फ्रांस में भी दूसरे वैज्ञानिकों ने इसी बात को और कई प्रमाणों से पुष्ट किया। परमाणु के ये विखंडन एक प्रकार की टेलीविजन की नली के सामने चमकीली रेखाओं के रूप में दिखाई पड़ते थे, जैसा नीचे के रेखाचित्र में

दिखाया गया है। इस सम्बन्ध में अब कोई सन्देह शेष न था। मन्द गति से चलने वाले न्यूट्रोन सचमुच ही यूरेनियम के नाभिक को फाड़ पाने में समर्थ थे।



प्रत्येक चमक की रेखा यूरेनियम के नाभिक के खंडित होने को सूचित करती है।

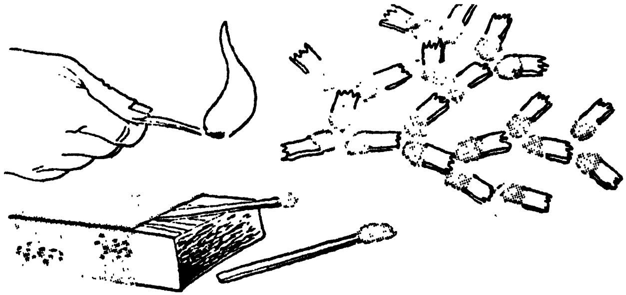
इस प्रकार परमाणु का दो लगभग समान भागों में फट जाना 'नाभिक का विखंडन' (न्युक्लियर फिशन) कहलाया। उस समय तक नाभिक में हुए जितने भी परिवर्तन का पता था, वे सब नाभिक में से कोई जरा-सा टुकड़ा तोड़ देने के समान थे। यह टुकड़ा या तो कोई प्रोटोन होता था, या कोई न्यूट्रोन और या कोई अल्फा कण। परन्तु इस समय जो कुछ हुआ था वह बिलकुल नयी और अलग चीज थी। यह परमाणु का असली खंडन था, जिसमें नाभिक लगभग दो समान भागों में टूट गया था। और इस बारे में बड़ी महत्वपूर्ण बात यह है कि नाभिक के विखंडन से जो ऊर्जा निकलती है, वह नाभिक पर होने वाली अन्य क्रियाओं

से निकलने वाली ऊर्जा की अपेक्षा दस से लेकर सौ गुनी तक अधिक होती है।

इससे पहले किये गये नाभिकों के परिवर्तनों में एक कठिनाई यह थी कि वे परिवर्तन आगे अपने आप जारी नहीं रह पाते थे। यह बहुत कुछ ऐसा ही था कि जैसे कोई आदमी पत्थरों को रगड़कर आग जलाने की कोशिश करे; और उस कोशिश में पत्थरों की रगड़ से चिनगारियाँ तो निकलती हों, परन्तु तुरन्त बुझ जाती हों। यदि कोई ऐसा उपाय ढूंढा जा सके, जिससे हर एक चिनगारी किसी और पदार्थ में आग लगा सके, तो आग की लपट तेजी से फैलती जायेगी और बहुत जल्दी ही आग अच्छी तरह धधकने लगेगी, जिससे काफी गर्मी (ऊर्जा) पैदा होगी।

विखंडन की क्रिया में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि जब यूरेनियम का नाभिक दो भागों में विखंडित होता है, तब क्या उसमें से कुछ और न्यूट्रोन बाहर निकलते हैं? यदि ऐसा होता हो, अर्थात् कुछ नये न्यूट्रोन बाहर निकलते हों, तो ये न्यूट्रोन और अधिक यूरेनियम के परमाणुओं को विखंडित कर सकते हैं; और उनसे फिर नये न्यूट्रोन निकलेंगे, जो और नये यूरेनियम परमाणुओं को विखंडित करेंगे। इस प्रकार यह क्रम चलता चला जायेगा। इसका अर्थ यह होगा कि परमाणु-विखंडन के क्रम को प्रारम्भ करने के लिए केवल एक मन्द गति वाले न्यूट्रोन की आवश्यकता होगी। एक परमाणु फटेगा; उस परमाणु के फटने से दूसरे परमाणु फटेंगे; उसके बाद विखंडन लगातार तीव्र और तीव्रतर होता जायगा और विखंडन की यह

क्रिया सारे यूरेनियम के ढेर में फैलती जायगी, जिससे बहुत बड़ी



जलती हुई दियासलाई की तीली से शृंखल प्रतिक्रिया शुरू हो रही है।

मात्रा में ऊर्जा निकलेगी। यह शृंखल प्रतिक्रिया (चेन रिऐक्शन) होगी; अर्थात् ऐसी प्रतिक्रया, जिसकी शृंखला या क्रम अपने आप आगे जारी रह सकेगा।

कुछ विज्ञानवेत्ताओं ने यह बात पता कर ली कि जब यूरेनियम का नाभिक फटता है, तो उसमें से सचमुच नये न्यूट्रोन छिटककर बाहर निकलते हैं; और इस प्रकार कम से कम इतना अवश्य प्रतीत होने लगा कि शृंखल प्रतिक्रिया को प्रारम्भ कर पाना सम्भव अवश्य है। प्रोफेसर बोहर ने यह खोज निकाला कि कोई भी भारी नाभिक, उदाहरण के लिए यूरेनियम का नाभिक, बहुत कुछ ऐसा होता है, जैसे किसी चिकनाई से पुती हुई प्लेट के ऊपर पानी की कोई बड़ी-सी बूंद पड़ी हो। यदि पानी की ऐसी बूंद पर कोई चीज आकर टकराये, तो बहुत सम्भव है कि यह बूंद इतने जोर से हिले-डुले कि दो हिस्सों में बँट जाय। जब ऐसा हो रहा होगा, अर्थात् कोई आघात लगने से पानी की वह

बूंद-हिल डुलकर दो हिस्सों में बँटने लगेगी, उस समय दो-चार बहुत छोटी-छोटी बूंदे छिटककर इधर-उधर भी जा पड़ेंगी। ठीक इसी ढंग से जब यूरेनियम के नाभिक से कोई न्यूट्रोन आकर टकरायेगा, तब नाभिक फटेगा और उसमें से नये न्यूट्रोन बाहर की ओर छिटककर निकलेंगे, जो यूरेनियम के दूसरे नाभिकों को फाड़ेंगे। उन नाभिकों के फटने से फिर नये न्यूट्रोन निकलेंगे और इसी प्रकार यह शृंखला आगे चलती जायेगी।

विज्ञानवेत्ताओं के लिए अब ये सब बातें ऐसी रोचक होती जा रही थीं, जैसे कोई बढ़िया जासूसी उपन्यास हो। अब अगला कदम यह था कि यह बात मालूम की जाय कि यूरेनियम के ज्ञात आइसोटोपों में से कौन-सा आइसोटोप शृंखल प्रतिक्रिया शुरू करने के लिए सबसे अधिक उपयोगी होगा। प्रकृति में पाया जाने वाला यूरेनियम यूरेनियम के तीन आइसोटोपों का मिश्रण है, जिनके भार क्रमशः २३४, २३५ और २३८ होते हैं। संसार में जितना भी यूरेनियम मिलता है, उसमें से ९० प्रतिशत भाग सबसे भारी प्रकार का आइसोटोप अर्थात् यूरेनियम २३८ होता है। यदि यूरेनियम का एक इंच लम्बा, एक इंच चौड़ा और एक इंच ऊँचा डला लिया जाय, तो उसमें से लगभग सबका सब यू २३८ होगा। उस डले में केवल एक मटर के दाने के बराबर यू २३५ होगा और आलपीन के सिर जितनी जरा-सी कनी यू २३४ की होगी। परमाणुओं को अलग-अलग छाँटने वाले यन्त्र में बहुत थोड़ी मात्रा में इन आइसोटोपों को अलग-अलग किया गया; और तब यह पता चला कि यू २३५ पर मन्द गति वाले न्यूट्रोनों की चोट प्रभावशाली रहती है और उससे विखंडन शुरू हो जाता

है। यू २३८ पर भी न्यूट्रोनों की चोट होती है, परन्तु उस चोट से यू २३८ विखंडित नहीं होता, बल्कि पूरा का पूरा बना रहता है। यू २३४ की मात्रा ही संसार में इतनी कम है कि उसके बारे में सोच-विचार की आवश्यकता ही नहीं समझी गयी।

यह बात स्पष्ट हो गयी कि यदि यू २३५ शृंखल प्रतिक्रिया प्रारम्भ करनी हो, तो यू २३८ के अधिकांश भाग को उससे अलग करना होगा। यह एक बहुत बड़ी समस्या थी कि यूरेनियम के इन दो आइसोटोपों को एक दूसरे से अलग करने का अच्छा उपाय क्या निकाला जा सकता है।

जब कोई न्यूट्रोन यू २३८ से आकर टकराता है, और उसमें चिपक जाता है, तब क्या होता है? जो कुछ होता है, वह बहुत रोचक है और साथ ही बहुत उपयोगी भी। विखंडित होकर फट जाने के बजाय यह नया परमाणु एक बीटा कण अर्थात् इलैक्ट्रोन बाहर की ओर फेंक देता है; और अपने आप नैप्चूनियम बन जाता है। नैप्चूनियम यूरेनियम के बाद सबसे भारी तत्व है; और इससे पहले तक यह किसीको ज्ञात नहीं था। इस प्रकार अन्त में वह बात सच निकलकर रही, जिसकी आशा फर्मी ने अपने पहले परीक्षणों में की थी।

नैप्चूनियम अपने आप में रेडियो-सक्रिय तत्व है। यह एक और इलैक्ट्रोन को अपने में से बाहर फेंक देता है और अपने आप ही अगला तत्व बन जाता है, जिसका नाम प्लूटोनियम है। और प्लूटोनियम का नाभिक किसी न्यूट्रोन के टकराने से यू २३५ के नाभिक की ही भाँति विखंडित होकर टूट जाता है; और उसमें से भी बड़ी विशाल मात्रा में ऊर्जा निकलती है।

१६३६ के सितम्बर में जब हिटलर की सेनाओं ने पोलैंड पर आक्रमण किया, उस समय तक केवल इतना कुछ मालूम हुआ था। यूरोप में युद्ध शुरू हो गया था; और इसलिए अलग-अलग देशों के विज्ञानवेत्ता आपस में एक दूसरे के काम की जानकारी न रख सके। कुछ जर्मन और फ्रांसीसी भौतिकी शास्त्री इंग्लैंड पहुँच गये थे और वहाँ उन्होंने इस विषय में विचार-विमर्श शुरू किया कि नाभिक के विखंडन का उपयोग किसी बम में किया जा सकता है या नहीं। उन्होंने गणना करके बताया कि यदि आधा सेर यूरेनियम २३५ में विद्यमान सारे परमाणुओं को विखंडन द्वारा एकाएक फाड़ा जा सके, तो उससे इतना बड़ा शक्तिशाली धमाका होगा, जितना २ करोड़ पौंड टी. एन. टी. के विस्फोट से होता। टी. एन. टी. एक सबसे अधिक शक्तिशाली रासायनिक विस्फोटक है और तब तक विस्फोटक बमों में इसीका प्रयोग किया जाता था।

बहुत शीघ्र ही इंग्लैंड की सरकार ने एक अनुसन्धान दल नियत कर दिया, जिसका काम यह था कि वह परमाणु बम बनाने की सम्भावनाओं पर विचार करे। इस दल का निर्देशक (डाइरैक्टर) जार्ज टामसन था, जो जे. जे. टामसन का पुत्र था। अब पहली समस्या यह थी कि बहुत बड़ी मात्रा में यू २३५ को यू २३८ से किस तरह अलग किया जाय। क्योंकि ये दोनों एक ही तत्व के दो आइसोटोप थे, इसलिए इन्हें अलग कर पाना टेढ़ी खीर थी। इन दोनों आइसोटोपों को अलग करने का कोई सरल रासायनिक उपाय नहीं था, इसलिए अन्य उपाय सुझाये गये। एक उपाय यह था कि परमाणुओं को अलग-अलग छांटने वाले

यन्त्र का उपयोग किया जाय। इस यन्त्र के चुम्बक के प्रभाव से हल्के आइसोटोप कुछ अधिक एक ओर को खिंच आयेंगे और भारी आइसोटोप कुछ कम खिंचेंगे। इस प्रकार दोनों आइसोटोप अलग-अलग किये जा सकेंगे। परन्तु बम बनाने के लिए यूरेनियम २३५ की बहुत बड़ी मात्रा की आवश्यकता थी; और इतनी बड़ी मात्रा में यू २३५ को अलग करने के लिए परमाणुओं को छाँटने वाली मशीनें बहुत बड़ी संख्या में आवश्यक थीं। इतनी बड़ी संख्या में कि उसका प्रबन्ध करना उस समय असम्भव जान पड़ता था।

एक और उपाय यह हो सकता था कि यूरेनियम को किसी और तत्व के साथ मिलाकर उसे गैस बना दिया जाय, और तब इस गैस को बहुत बारीक चलनियों के अन्दर से गुजरने दिया जाय। क्योंकि वे अणु, जिनमें यू २३५ होगा, उन अणुओं से हल्के होंगे, जिनमें यू २३८ होगा, इसलिए दोनों प्रकार के अणु अलग-अलग चलनियों में अधिक संख्या में जायेंगे; अर्थात् बारीक चलनियों में से गुजरने वाले अणुओं में यू २३५ की मात्रा अधिक होगी और मोटी चलनियों में से गुजरने वाले अणुओं में यू २३८ की। यदि इस प्रक्रिया को कई हजार बार दुहराया जाय, तो दोनों आइसोटोपों का पृथक्करण अधिक और अधिक पूर्ण होता जायेगा। इन दोनों उपायों के अतिरिक्त और भी कई उपायों पर विचार-विमर्श किया गया।

इसी बीच अमेरिका में आइन्स्टीन तथा अन्य विज्ञानवेत्ताओं ने प्रजीडैन्ट रूजवेल्ट से आग्रह किया कि वह अमेरिका में भी परमाणु के सम्बन्ध में अनुसन्धान शुरू करायें। उन्हीं दिनों १९४१ के दिसम्बर के शुरू में पर्ल हार्बर पर जापानियों का आक्रमण

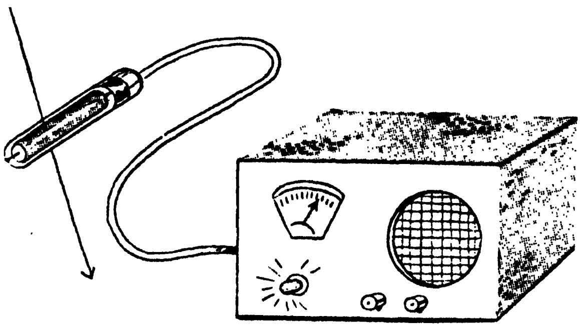
हुआ और अमेरिका भी लड़ाई में कूद पड़ा। अमेरिकन सरकार ने परमाणु-ऊर्जा के सम्बन्ध में कार्य करने के लिए कई विश्व-विद्यालयों को बड़ी-बड़ी धन राशियाँ दीं।

१९४२ में शिकागो विश्वविद्यालय के ऐनरिको फर्मी और उसके साथी विज्ञानवेत्ताओं ने एक वस्तु तैयार की, जिसे उन्होंने परमाणु भट्ठी नाम दिया। इस परमाणु भट्ठी का उद्देश्य यह देखना था कि क्या वे ऐसी शृंखल प्रतिक्रिया शुरू कर सकते हैं कि जो आगे अपने आप चलती रह सके। उन्होंने बिलकुल विशुद्ध ग्रैफाइट की ईंटें तैयार कीं। ग्रैफाइट कार्बन का ही एक रूप है, जो आमतौर से पेन्सिलों में इस्तेमाल किया जाता है। ग्रैफाइट की इन ईंटों के बीच-बीच में उन्होंने यूरेनियम धातु की छोटी-छोटी डलियाँ रख दीं। इसी तरह उन्होंने एक तह के ऊपर दूसरी तह करके कई तहें जमा दीं, जिनमें ईंटों के बीच-बीच में यूरेनियम की डलियाँ रखी हुई थीं। यह सारी रचना लगभग १८ फीट ऊँची और एक ऐसी बड़ी गेंद की आकृति की थी, जिसे पिचका कर रख दिया गया हो। ग्रैफाइट की ईंटों का प्रयोजन यह था कि वे शामक (माडरेटर) के रूप में काम कर सकें और नये बनने वाले न्यूट्रोनों की चाल को धीमा कर सकें, जिससे वे न्यूट्रोन सरलता से यू २३५ के दूसरे परमाणुओं के नाभिकों में घुस सकें और इस शृंखल प्रतिक्रिया को जारी रख सकें।

इस प्रतिक्रिया को नियंत्रित रखने के लिए, और अगर यह बहुत तेजी से होने लगे तो इसे रोकने के लिए भट्ठी के बीच में विशेष रूप से बनाये हुए छेदों में कैडमियम धातु की पतरियाँ रखी गयीं। इन पतरियों को आवश्यकतानुसार छेद में से निकाला

जा सकता था और फिर आवश्यकता पड़ने पर छेद में डाला जा सकता था। कैडमियम न्यूट्रोनों को चूस लेता है; इसलिए कैडमियम की ये पतरियाँ प्रतिक्रिया को मन्द करने के लिए ब्रेक का-सा काम करती हैं। यदि परीक्षणकर्ता यह चाहें कि प्रतिक्रिया को तेज किया जाय, तो कैडमियम की इन पतरियों को भट्ठी से अंशतः बाहर की ओर खींच लिया जा सकता है; और यदि प्रतिक्रिया बहुत अधिक तेजी से होने लगे, तो उन पतरियों को फिर अन्दर धकेला जा सकता है।

न्यूट्रोनों की संख्या की गिनती या नाप सदा एक यन्त्र 'गीगर गणक' (गीगर काउंटर) द्वारा किया जाता है। इस यन्त्र का आविष्कार रदरफोर्ड के एक सहायक हान्स गीगर ने किया था। उसीके नाम पर यह 'गीगर गणक' कहलाने लगा। गीगर गणक एक गैस से भरी हुई नली होती है। जब कोई भी तीव्रगामी कण या गामा किरण इस नली के पार गुजरती है, तो इस यन्त्र में से चमक निकलती है या 'चट चट' की आवाज होने लगती है।



जब कोई तीव्रगामी कण गीगर गणक से आकर टकराता है तो यन्त्र उसकी सूचना देता है।

२ दिसम्बर, १९४२ नाभिकीय भौतिकी शास्त्र के इतिहास में एक बड़ी संक्रान्ति का दिवस था। उस दिन फर्मी और उसके सहायकों ने परमाणु भट्ठी को चालू किया।

जब फर्मी ने नियन्त्रक पतरियों को थोड़ा-सा बाहर की ओर खींच लेने का आदेश दिया तो उस गुप्त प्रयोगशाला में खड़ा हुआ प्रत्येक व्यक्ति दम साधे उस भट्ठी की ओर देखने लगा। गीगर गणकों में से 'चट चट' की आवाज आने लगी, जो तेज और तेज होती गयी। भट्ठी ठीक तरह काम कर रही थी। जल्दी ही पतरियाँ फिर अन्दर की ओर धकेलकर बन्द कर दी गयीं। गीगर गणकों की आवाज फिर धीमी पड़ गयी। इससे सभीने सन्तोष की साँस ली। इतिहास में पहली बार विज्ञानवेत्ता एक ऐसी नाभिकीय शृंखल प्रतिक्रिया प्रारम्भ कर पाये थे, जो अपने आप जारी रह सकती थी।

अब तो इस क्षेत्र में तूफान-सा आ गया। अमरीकन सरकार ने परमाणु बमों के लिए नाभिकीय सामग्री बनाने के लिए बड़े-बड़े कारखाने बनाने का आदेश दिया। रातों रात पूरे शहर के शहर बनाकर तैयार कर दिये गये। वाशिंगटन राज्य में हैनफोर्ड में तीन विशालकाय भट्ठे बनाये गये, जिनमें से प्रत्येक ५ मंजिल की इमारत जितना ऊँचा था। इस समय तक विज्ञानवेत्ताओं ने इन भट्ठों को नाभिकीय प्रतिकरण (न्यूक्लियर रिऐक्टर) नाम दे दिया था। इस कारखाने का मुख्य उद्देश्य यह था कि तीव्र-गामी न्यूट्रोनों द्वारा यू २३८ के परमाणुओं पर चोट की जाय, और उससे प्लूटोनियम तैयार किया जाय। इस प्रकार यूरेनियम का वह बहुत बड़ा भाग, जो अब तक विखंडन की दृष्टि से बेकार

था, विखंडन के लिए उपयोगी बनाया जा सकता था।

जब किसी प्रतिकरण (रिऐक्टर) के अन्दर विखंडन की प्रक्रिया हो रही होती है, तो इससे बहुत अधिक ताप उत्पन्न होता है। इस ताप को किसी न किसी प्रकार कम रखने के लिए प्रतिकरण को ठंडा रखना होता है। शिकागो वाले प्रतिकरण में कभी भी उतने से अधिक ताप उत्पन्न नहीं होने दिया गया था, जितने से चाय की केतली का पानी दो मिनट में उबल सके। इसकी तुलना में हैनफोर्ड के प्रतिकरणों का खयाल कीजिये, जिनको ठंडा रखने के लिए विशाल कोलम्बिया नदी के सारे पानी का उपयोग करना पड़ता था। ऊर्जा की इस विशाल मात्रा को व्यर्थ ही फेंक देने की कोई आवश्यकता नहीं है; बल्कि जैसा आप आगे चलकर देखेंगे, इसका काफी सदुपयोग किया जा सकता है।

टैनेसी राज्य में ओक रिज नामक स्थान पर सैकड़ों एकड़ जमीन में एक विशाल कारखाना बनाया गया, जिसमें छानने की पद्धति से यू २३५ को शेष यूरेनियम से अलग किया जाने लगा। १९४४ की गर्मियों में इस कारखाने में काम पूरी तेजी से चलने लगा था। उसके कुछ महीने बाद ओक रिज में ही एक और कारखाना चालू किया गया, जिसमें परमाणुओं को अलग-अलग छाँटने की पद्धति द्वारा यू २३५ को यू २३८ से अलग-अलग किया जाता था।

इस समय तक अमरीकनों के पास उन दो पदार्थों की काफी बड़ी मात्रा तैयार करने के साधन हो गये थे, जो बम बनाने के लिए उपयुक्त थे। वे पदार्थ थे—यू २३५ और प्लूटोनियम। परन्तु इस प्रकार के बम का आखिर विस्फोट किस प्रकार किया

जा सकता था ?

कल्पना कीजिये कि कोई एक अकेला मन्दगामी न्यूट्रोन यू २३५ या प्लूटोनियम के किसी बड़े-से टुकड़े के आसपास फिर रहा है—कुछ न कुछ न्यूट्रोन सदा सब जगह विद्यमान रहते हैं। शायद ये न्यूट्रोन कास्मिक किरणों के प्रभाव से परमाणुओं में से टूटकर अलग हो जाते हैं—यह अकेला न्यूट्रोन किसी एक नाभिक में जाकर घुस जाता है और विखंडन द्वारा उसे तोड़ डालता है। जब ऐसा होता है, तब एक से अधिक अतिरिक्त न्यूट्रोन परमाणु में से छिटककर बाहर निकलते हैं। कल्पना कीजिये कि इस तरह बाहर निकलने वाले अतिरिक्त न्यूट्रोनों की औसत संख्या २ है; क्योंकि बहुत बार २ से अधिक न्यूट्रोन भी परमाणु में से बाहर निकलते हैं। यदि ये दोनों नये न्यूट्रोन २ और नाभिकों में विखंडन उत्पन्न कर दें, तो अगली बार उन दोनों में से ४ नये न्यूट्रोन निकलेंगे। इन ४ न्यूट्रोनों द्वारा ४ नाभिकों का विखंडन होने पर उनसे ८ न्यूट्रोन निकलेंगे और इसी प्रकार यह क्रम चलता जायगा। यह संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जायेगी।

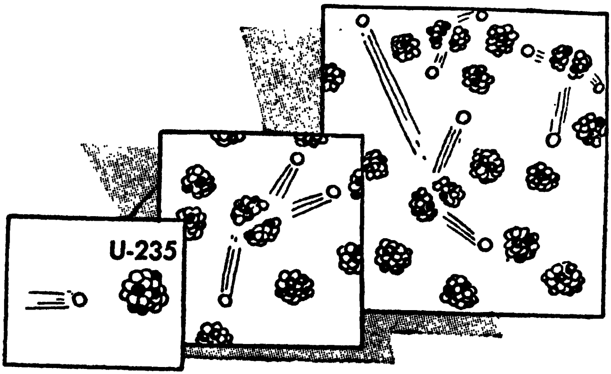
शायद कभी आपने एक प्राचीन राजा की कहानी सुनी हो। एक बार उस राजा की जान उसकी प्रजा के एक आदमी ने बचायी थी। राजा उसे पुरस्कार देना चाहता था। उसने उस आदमी से कहा: "तुम्हारी जो इच्छा हो इनाम मांगो, मैं तुम्हें दूंगा।"

उस आदमी ने उत्तर दिया: "महाराज सब लोग जानते हैं कि आपको शतरंज खेलने का बड़ा शौक है। पुरस्कार के रूप में मैं यह चाहता हूँ कि शतरंज के पहले खाने में एक गेहूँ रखा जाये;

श्रौर दूसरे खाने में द। गेहूँ; तीसरे में ४; श्रौर इसी प्रकार हर अगले खाने में पहले खाने की अपेक्षा दुगने गेहूँ के दाने रखते चले जायें; और इस तरह पूरे ६४ खाने जितने दानों से भर जायें, उतने गेहूँ के दाने मुझे दे दिये जायें।"

राजा कुछ हँसा और बोला : "तुमने जो काम किया है, उसके बदले ये गेहूँ के थोड़े-से दाने कोई भला इनाम नहीं हैं; तुम अगर चाहो, तो राज्य में से यथेच्छ सोना और रत्न माँग सकते हो। मैं तुमसे फिर कहता हूँ कि फिर सोच लो और कुछ दूसरी चीज़ माँग लो।" परन्तु आदमी अपनी पहली ही माँग पर डटा रहा। तब राजा ने आदेश दिया कि उसे गेहूँ के उतने दाने गिन कर दे दिये जायँ।

कुछ ही समय बाद राजा का मुख्य सेवक दौड़ता हुआ आया और उसने घबरायी हुई आवाज में कहा : "महाराज, हमारे सारे



जब एक न्यूट्रोन किसी एक नाभिक को विखंडन द्वारा तोड़ डालता है, तब उसके बाद अनगिनत विखंडन होते चले जाते हैं।

राज्य में इतना गेहूँ नहीं है कि जिससे इस आदमी की माँग पूरी की जा सके।"

हममें से अधिकांश लोगों की ही तरह उस राजा ने भी इस बात को अनुभव नहीं किया था कि बार-बार दुगना करते जाने से संख्या कितनी तेजी से बढ़ती चली जाती है। यदि राजा उस माँगे हुए पुरस्कार को देना चाहता, तो उसे १८ अरब गेहूँ के दाने देने पड़ते। इतने दाने चार घनमील—अर्थात् ४ मील लम्बा, ४ मील चौड़ा और ४ मील ऊँचा स्थान—में समा पाते।

ठीक यही बात न्यूट्रोनों की संख्या को बार-बार दुगना करते जाने से होती है। न्यूट्रोनों के मामले में इस दुगना होने की प्रक्रिया में एक सैकिंड के दस लाखवें भाग से भी कम समय लगता है। इसका अर्थ यह है कि लगभग तुरन्त ही एक बड़ी विशाल संख्या में विखंडन हो जाते हैं और प्रत्येक विखंडन से ऊर्जा निकलती है। इसका परिणाम एक इतना भयानक शक्तिशाली विस्फोट होता है, जिसपर सहसा विश्वास कर पाना कठिन है। यही परमाणु बम है।

एक और बात स्पष्ट करके समझ लेने की आवश्यकता है: जब सदा कुछ न कुछ भटकते हुए न्यूट्रोन आसपास रहते ही हैं, तब यू २३५ या प्लूटोनियम तैयार होते ही तुरन्त क्यों नहीं फट जाता? इसका उत्तर यह है कि यदि यू २३५ या प्लूटोनियम की डली बहुत छोटी हो, तो विखंडन की श्रृंखला इसलिए टूट जाती है कि बहुत-से न्यूट्रोन छिटककर डली से बाहर की ओर इस ढंग से बिखर जाते हैं कि वे नये नाभिकों से जाकर नहीं टकरा पाते; और इसीलिए यह क्रिया पूरी तरह कभी शुरू नहीं हो पाती।

परन्तु यदि यू २३५ या प्लूटोनियम का डला क्रिकेट की गेंद जितना बड़ा हो, तो उसमें शृंखल प्रतिक्रिया शुरू हो जायेगी, क्योंकि जितने न्यूट्रोन बाहर की ओर छिटककर निकलेंगे, उससे अधिक नये न्यूट्रोन तैयार हो रहे होंगे। परमाणु बम में विखंडित होने वाली सामग्री अलग-अलग दो इतने छोटे टुकड़ों में रखी रहती है कि वे अपने आपमें विस्फोट होकर फट नहीं सकते। परन्तु जब इस बम का विस्फोट करना अभीष्ट होता है, उस समय इन दोनों टुकड़ों को जोर से आपस में टकरा दिया जाता है। आपस में जोर से टकराने से वह एक बड़ा टुकड़ा बन जाता है, और वह एक सैकिंड के एक हजारवें भाग से भी कम समय में विखंडित होकर फट पड़ता है।

इससे आगे की कहानी सब लोगों को भली भाँति विदित ही है। पहले पहल १६ जुलाई, १९४५ को एक परमाणु बम तैयार किया गया था, और न्यूमैक्सिको के मरुस्थल में उसका सफलता-पूर्वक परीक्षण भी किया गया था। ६ अगस्त, १९४५ को एक अमरीकन बमवर्षक विमान ने जापान के शहर हीरोशिमा पर यूरेनियम २३५ का बना हुआ एक परमाणु बम गिराया। इसके तीन दिन बाद नागासाकी शहर पर प्लूटोनियम से बना हुआ एक और परमाणु बम गिराया गया। उस समय पहली बार संसार को पता चला कि इससे पहले के ६ वर्षों में अर्थात् युद्ध के प्रारम्भ होने के समय से लेकर अब तक चुपचाप गुप्त रूप से कितना कुछ काम हो रहा था। एक महीने के अन्दर ही जापान ने आत्म-समर्पण कर दिया और प्रशान्त महासागर में युद्ध समाप्त हो गया।

अध्याय | १२

छोटे परमाणुओं से बड़ों का निर्माण

सूर्य किस वस्तु के कारण दमकता रहता है ? इस प्रश्न ने विज्ञानवेत्ताओं को कई शताब्दियों से परेशान किया हुआ था। अब इस प्रश्न का उत्तर एक बहुत ही आश्चर्यजनक रूप में मिला। परमाणुओं के नाभिक से ही वह विशाल ऊर्जा प्राप्त होती है, जिसे हमारा सूर्य तथा अन्य अनगिनत तारे अरबों-खरबों वर्षों से व्योम में बिखेर रहे हैं।

हमारा सूर्य, जिसपर पृथ्वी पर विद्यमान सम्पूर्ण जीवन निर्भर है, एक मामूली ढंग का तारा है—एक श्वेत उष्ण गैसों की एक दमकती हुई बहुत विशाल गेंद। खगोल शास्त्रियों को यह बात मालूम है कि अन्य बहुत-से तारे हमारे सूर्य की अपेक्षा हजारों गुना अधिक चमकीले हैं और बहुत-से तारे हमारे सूर्य की अपेक्षा कम चमकीले भी हैं। हमारा सूर्य एक मध्यम आकार का तारा है; अर्थात् इससे हजारों गुना बड़े तारे भी मौजूद हैं और इससे छोटे तारे भी बहुत-से हैं। हमारा सूर्य लगभग १० लाख अरब अरब अश्व बल के हिसाब से प्रकाश और ताप उत्पन्न कर रहा है। हमारी छोटी-सी पृथ्वी, जो सूर्य से नौ करोड़ तीस लाख मील दूर है, इस प्रकाश और ताप का केवल ५० करोड़वाँ अंश ही प्राप्त कर पाती है। इतना होने पर भी ऊर्जा की यह मात्रा बहुत अधिक विशाल है। सूर्य से हम तीन मिनट में जितनी

ऊर्जा प्राप्त कर लेते हैं, वह सारे संसार के कारखानों को पूरे एक साल तक चलाते रहने के लिए काफी है।

पहले पहल लोगों का विचार था कि सूर्य में ऊर्जा किसी वस्तु के जलने के कारण उत्पन्न होती है; परन्तु इस विचार को बहुत शीघ्र ही छोड़ देना पड़ा। यदि सारा सूर्य पत्थर के कोयले से बना होता, तो भी वह केवल कुछ हजार वर्ष तक ही जलता रह सकता था। उसके बाद बुझकर समाप्त हो जाता। परन्तु विज्ञानवेत्ताओं को मालूम है कि हमारी पृथ्वी को ही आयु कई अरब वर्ष है। इसलिए सूर्य की आयु भी कम से कम उतनी तो होनी ही चाहिए; उससे कितनी अधिक हो, यह विचारणीय है। एक और धारणा इस सम्बन्ध में यह थी कि सूर्य में प्रकाश और ताप इस कारण उत्पन्न होता है, क्योंकि जिस वस्तु से सूर्य बना है, वह धीरे-धीरे सूर्य के केन्द्र की ओर सिकुड़ती जा रही है। इस सम्बन्ध में भी हिसाब करने से यह पता चला कि यदि ऐसी बात होती, तो भी सूर्य बहुत समय तक जलता नहीं रह सकता था।

किन्तु जब रेडियो-सक्रियता (रेडियो-ऐक्टिविटी) का पता चला, तो विज्ञानवेत्ताओं ने समझ लिया कि यह एक ऐसी वस्तु है, जिससे इतनी ऊर्जा निकलती रह सकती है कि उससे सूर्य और तारों के इतने लम्बे समय तक गर्म और चमकीला बने रहने की व्याख्या हो सकती है। आपको याद होगा कि रेडियो-सक्रियता में जब नाभिक टूटते हैं, तब तीव्रगामी कण और गामा किरणें उनमें से बाहर निकल सकती हैं। किसी भी रेडियो-सक्रिय पदार्थ के टुकड़े में इन कणों और तरंगों की ऊर्जा ताप के रूप में बदल

जाती है। इसी कारण रेडियम की डली अपने आसपास रखी हुई अन्य वस्तुओं की अपेक्षा थोड़ी-सी अधिक गर्म होती है। परन्तु यह गर्मी बहुत अधिक नहीं होती। यदि किसी प्रकार एक औंस रेडियम से निकलने वाली सारी गर्मी को इकट्ठा किया जा सके, तो वह इतनी कम होगी कि उससे एक प्याला पानी उबालने में आठ घण्टे लग जायेंगे। परन्तु यदि रेडियो-सक्रिय पदार्थ को बहुत बड़ी मात्रा में एक जगह इकट्ठा किया जा सके, तो उससे निकलने वाली गर्मी बहुत अधिक होगी। पर, जहाँ तक हमें मालूम है, सूर्य के अन्दर प्राकृतिक रूप से रेडियो-सक्रिय पदार्थ बहुत नहीं है। सूर्य और तारों का अधिकांश भाग हाइड्रोजन है।

सूर्य के अन्दर गहराई में दशा इतनी अद्भुत है कि उसकी कल्पना कर पाना भी हमारे लिए सम्भव नहीं है। सूर्य के केन्द्र में तापमान लगभग ४ करोड़ तापांश (डिग्री) का है और सूर्य के ऊपर की तह का भार अन्दर की तहों पर उसकी अपेक्षा १० लाख गुने से भी अधिक है, जितना हमारे महासागरों की गहराई में तली पर पानी का दबाव है। हम इस बात की केवल कल्पना ही कर सकते हैं कि इस प्रकार की दशाएँ किस ढंग की होंगी। सम्भवतः उस दशा में परमाणुओं के इलैक्ट्रोन अपने नाभिकों से बिलकुल अलग हो जाते हैं। उस दशा में बाहरी इलैक्ट्रोनों का बचाव न होने के कारण तीव्रगामी नाभिक अर्थात प्रोटोन जब एक दूसरे से टकराते होंगे, तो वे एक दूसरे पर प्रतिक्रिया करते होंगे।

सूर्य और तारों की ऊर्जा की व्याख्या करने के लिए यह

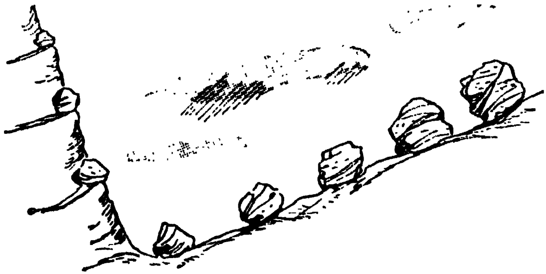
धारणा भौतिकी शास्त्रियों ने दूसरे विश्व युद्ध के पहले प्रस्तुत की थी। परमाणुओं की जो क्रिया एक दूसरे पर होती सम्भव जान पड़ती है, वह यह है कि चार हाइड्रोजन के परमाणु मिलकर एक हीलियम का परमाणु बन जाते हों। इस प्रकार हल्के परमाणुओं का आपस में मिलकर एक भारी परमाणु बन जाना नाभिकीय संगलन (न्यूक्लियर फ्यूशन) कहलाता है। संगलन का अर्थ है दो वस्तुओं का गर्मी के कारण पिघलकर एक हो जाना। नाभिकीय संगलन की प्रतिक्रिया उस समय तक हमारी पृथ्वी पर नहीं की जा सकी थी। इसका सीधा-सादा कारण यह था कि परीक्षणकर्ताओं के पास इतना ऊँचा तापमान उत्पन्न करने का कोई उपाय ही न था, जितने पर नाभिकीय संगलन की यह प्रक्रिया शुरू हो सके। फिर भी कागज पर हिसाब लगाकर गणित से यह बताया जा सकता था कि यदि किसी प्रकार यह नाभिकीय संगलन किया जा सके, तो उससे कितनी ऊर्जा उत्पन्न होगी। इस गणना की कुंजी आइन्स्टीन का वही प्रसिद्ध गुर था कि ऊ=प. प्र. वे.^{2}। परमाणुओं को अलग-अलग छाँटने के यन्त्रों द्वारा किये गये परीक्षणों से भौतिकी शास्त्रियों को यह बात बिलकुल ठीक-ठीक मालूम हो गयी थी कि चार हाइड्रोजन के परमाणु का भार कितना होता है। हीलियम के एक परमाणु का भार हाइड्रोजन के चार परमाणुओं के कुल भार से थोड़ा-सा कम होता है। इस प्रकार यह भार जितना थोड़ा-सा कम होता है, उतने पदार्थ को ऊर्जा के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। एक पौंड हाइड्रोजन को हीलियम के रूप में परिवर्तित करने की प्रक्रिया में लगभग ¹ औंस पदार्थ लुप्त हो

जायेगा। इतने पदार्थ के स्थान पर इतनी ऊर्जा उत्पन्न होगी, जितनी ३६०००० मन पत्थर का कोयला जलाने से उत्पन्न होती है।

आखिर यहाँ आकर ऊर्जा के उत्पन्न होने का एक ऐसा उपाय दीख पड़ा था, जिससे इस बात की व्याख्या की जा सकती थी कि हमारे सूर्य और तारों में क्या कुछ हो रहा है; और वे किस प्रकार से इतने लम्बे समय से निरन्तर ताप और प्रकाश फेंक रहे हैं। इस सम्बन्ध में और विस्तार से गणनाएँ करके देखा गया। तब यह पता चला कि हमारे सूर्य में कार्बन, आक्सीजन और नाइट्रोजन जैसे दूसरे नाभिक भी प्रतिक्रिया में भाग लेते हैं, अर्थात् हाइड्रोजन के परमाणुओं को हीलियम के परमाणु बनाने में सहायता करते हैं। परन्तु जब यह सारी प्रक्रिया खतम हो जाती है, तब ये कार्बन इत्यादि के दूसरे परमाणु ज्यों के त्यों बिना बदले बाकी बच जाते हैं। इस प्रक्रिया में केवल एक ही पदार्थ वस्तुतः खप जाता है, और वह है हाइड्रोजन। और हमारे सूर्य तथा तारों में हाइड्रोजन इतनी मात्रा में विद्यमान है कि उससे सूर्य और तारों का काम अभी अरबों वर्षों तक चलता रह सकता है।

जब विज्ञानवेत्ताओं को यह पता चल गया कि हाइड्रोजन के परमाणुओं को अगर आपस में मिलाकर हीलियम के रूप में बदलने से विशाल मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है, तो वे यह सोचने लगे कि क्या किसी प्रकार पृथ्वी पर भी इस प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है। ऐसा कर पाना सम्भव है, यह मानने के लिए काफी कारण थे। इस बात को समझने के लिए ऐसी कल्पना करें कि मानो रासायनिक तत्व पत्थर की बड़ी-

बड़ी चट्टानें हैं, जो किसी ढलवाँ घाटी में कोई ऊपर, कोई नीचे पड़ी हुई हैं। जो हल्की चट्टानें हैं, वे घाटी में उस ओर पड़ी हैं, जिस ओर ढलान एकदम सीधा है; और भारी चट्टानें उस ओर पड़ी हैं, जिस ओर ढलान बहुत थोड़ा है। घाटी की तली के आस-पास, जहाँ कि भूमि लगभग समतल है, इस तरह की चट्टानें पड़ी हैं, जो न तो बहुत हल्की ही हैं और न बहुत भारी ही। अब कल्पना करें कि यदि कोई हल्का-सा भूकम्प आ जाये, तो जो चट्टानें ढलान पर ऊँचाई पर पड़ी हैं, वे हिलेंगी और लुढ़कती हुई घाटी में नीचे आ गिरेंगी। परन्तु जो चट्टानें पहले से ही घाटी की तली में लगभग समतल जमीन पर पड़ी हैं, वे बहुत कम हिलेंगी।



भूकम्प के समय समतल जमीन पर पड़ी चट्टानें बहुत ही कम हिलेंगी।

ठीक यही बात तत्वों के विषय में होती है। सबसे भारी तत्वों के परमाणु विखंडन द्वारा टूटकर अपेक्षाकृत हल्के तत्वों के परमाणु बन जाते हैं, और इस विखंडन से बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा निकलती है, जैसा कि आपने पिछले अध्याय में देखा था। परन्तु सबसे हल्के तत्व जब संगलन द्वारा भारी तत्वों के रूप में बदलते हैं, तब

उनसे कहीं अधिक मात्रा में ऊर्जा निकलती है। मध्यम भार वाले तत्वों के परमाणुओं में जब परिवर्तन होता है, तो उनसे बहुत थोड़ी मात्रा में ऊर्जा निकलती है।

इस समय तक दूसरा विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था और भौतिकी शास्त्री नाभिकों का संगलन करने के उपाय सोचने में जुट गये थे। उन्हें विखंडन का रहस्य तो मालूम हो ही चुका था और अब संगलन द्वारा विखंडन की अपेक्षा भी सैकड़ों गुनी ऊर्जा प्राप्त कर पाने की सम्भावना थी। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि विखंडन के काम में आने वाली यूरेनियम धातु बहुत विरल और दुर्लभ है, जबकि इसके विपरीत संगलन में काम आने वाली हाइड्रोजन बहुत बड़ी मात्रा में सुलभ है। इस सम्बन्ध में कठिनाई यह थी कि हल्के भार वाले नाभिकों को यदि आपस में मिलाना हो, तो उन्हें बड़ी प्रचंड शक्ति के द्वारा एक दूसरे से टकराया जाना चाहिये। नाभिकों को इतनी तीव्र-गति से टकराने की शक्ति केवल बहुत ऊँचे तापमान द्वारा ही दी जा सकती है। इस समय तक बहुत ऊँचा तापमान उत्पन्न करने का एक उपाय विज्ञानवेत्ताओं के हाथ आ गया था और वह था विखंडन बम अर्थात् परमाणु बम। विखंडन बम से हाइड्रोजन को धधकाने के लिए दियासलाई की तीली का काम क्यों न लिया जाय?

जब विज्ञानवेत्ताओं ने इन सम्भावनाओं पर गहराई से विचार किया, तो यह मालूम हुआ कि न तो सामान्य भार वाला हाइड्रोजन आइसोटोप और न दुगने भार वाला हाइड्रोजन आइसोटोप ही उन विखंडन बमों के साथ काम कर सकता था, जो

उस समय उनके पास थे। परन्तु बहुत दुर्लभ और बिरल तिगुने भार वाले हा ३. से सफलता मिलने की कहीं अधिक आशा थी। अमरीका की सरकार ने दक्षिणी कैरोलिना राज्य में हा ३. बनाने के लिए सवाना नदी पर एक विशाल प्रतिकरण कारखाना लगाया। इस कारखाने के बनाने पर लगभग साढ़े सात अरब रुपये की लागत आई और इसमें तैयार होनेवाला हा ३. अर्थात् तिगुने भार वाला हाइड्रोजन इतना महँगा पड़ता था कि एक पौंड हा ३. की लागत लगभग ५० लाख रुपये थी।

इससे आगे जो कुछ हुआ, उसका हम केवल अनुमान कर सकते हैं, क्योंकि उस समूची की समूची परियोजना को अमरीकन सरकार ने बिलकुल गुप्त रखा है। इतना हमें अवश्य मालूम है कि १९५२ में पहली नवम्बर के प्रातःकाल जब अमरीका ने अपने पहले हाइड्रोजन बम का परीक्षण किया, तो उसमें ऐनीवैटोक द्वीप समूह का एक छोटा-सा द्वीप बिलकुल लुप्त ही हो गया। उस हाइड्रोजन बम से जो विस्फोट हुआ, उसके सम्बन्ध में य अन्दाज था कि उसकी शक्ति ५० लाख टन टी. एन. टी. के विस्फोट के बराबर थी और परमाणु बम के विस्फोट की अपेक्षा कई सौ गुनी अधिक थी। सम्भवतः इस हाइड्रोजन बम में हा २. के साथ बहुत थोड़ी मात्रा में हा ३. को मिलाकर प्रयोग किया गया था। यदि केन्द्र में एक यूरेनियम का विखंडन बम रख हुआ हो, तो उसके विस्फोट से हा २ और हा ३ के मिश्रण में संगलन प्रारम्भ हो जायगा और इस संगलन से बम का मुख्य विस्फोटक फूट पड़ेगा। अनुमान यह किया गया है कि हाइड्रोजन बम में मुख्य विस्फोटक द्रव्य लिथियम का एक रासायनिक समास था।

लिथियम हीलियम के बाद अगला भारी परमाणु है। लि ६ के परमाणु के और हा २ के परमाणु के नाभिक कण आपस में मिलकर इस तरह की नई व्यवस्था कर लेते हैं कि जिससे २ हीलियम के नाभिक तैयार हो जाते हैं और विशाल मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होती है।

इस सम्बन्ध में अमरीका की सरकार की ओर से तब से अब तक और बहुत-से परीक्षण किये जाते रहे हैं; और वे परीक्षण अब तक जारी हैं।

अध्याय | १३

अधिक जनता के लिए अधिक शक्ति

पिछले दो अध्यायों में उस विशाल ऊर्जा के सम्बन्ध में बतलाया गया है जो नाभिकों के विखंडन या संगलन द्वारा उन्मुक्त की जा सकती है। यदि यह सारी ऊर्जा एकदम उन्मुक्त हो जाये, तो इससे बम के अतिरिक्त और कुछ नहीं बन सकता। परन्तु यदि किसी प्रकार इस ऊर्जा के निकलने की गति को नियंत्रित किया जा सके और उसे समय की लम्बी अवधि में फैलाया जा सके, तो इस ऊर्जा का व्यावहारिक उपयोग भी किया जा सकता है। विखंडन की खोज होने के बाद से ही विज्ञानवेत्ता और इंजीनियर ऐसे उपाय खोजने में जुटे हैं, जिनके द्वारा नाभिकीय शक्ति से चलने वाले ऐसे संयन्त्र (प्लांट) तैयार किये जायें, जिनसे कारखानों में मशीनें चलाने के लिए, परिवहन के लिए और घरों में प्रकाश और गर्मी देने के लिए ऊर्जा प्राप्त हो सके।

नाभिकीय शक्ति से चलने वाले संयन्त्र बनाने की इस तीव्र इच्छा के कई बड़े कारण हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि ऐसे संयन्त्रों से हमें आजकल के मामूली रासायनिक ईंधन जैसे कोयला, तेल या गैस से काम करने वाले शक्ति संयन्त्रों की अपेक्षा सैकड़ों या हजारों गुनी ऊर्जा प्राप्त हो सकेगी। फिर एक और बात यह है कि नाभिकीय ईंधन को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना रासायनिक ईंधन की अपेक्षा कहीं सरल होगा। यू २३५

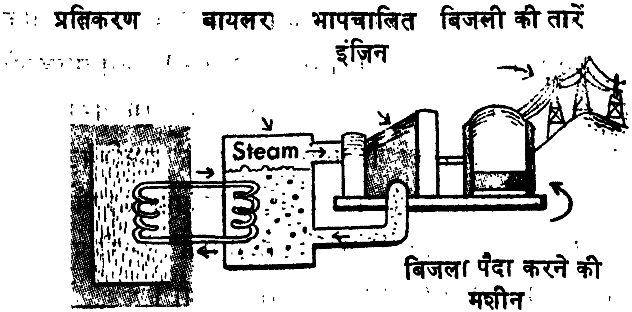
का एक पौंड भारी टुकड़ा इतनी ऊर्जा उत्पन्न कर सकता है, जितनी ४०००० मन पत्थर का कोयला जलाने से उत्पन्न होती है। परन्तु शक्ति प्राप्त करने के लिए परमाणु का उपयोग करने की सबसे अधिक आवश्यकता इस कारण है, क्योंकि संसार में जितना भी कोयला, तेल और गैस है, वह सब केवल कुछ सौ साल में ही खत्म हो जायेगा। इससे अधिक समय तक वह हमारा काम नहीं दे सकता। जब आपके पोते-प्रपोते बड़े होंगे, तब सम्भवतः उनके सामने यह समस्या खड़ी होगी।

सौभाग्य से इस समस्या के कम से कम एक अंश को हल करने के सम्बन्ध में काम शुरू हो चुका है। यह हल है नाभिकीय प्रतिकरण (न्यूक्लियर रिऐक्टर)। यदि हम नाभिकीय प्रतिकरण में उत्पन्न होने वाले ताप का उपयोग भाप के इंजिनों और वाष्प चालित बिजली पैदा करने वाले यन्त्रों को चलाने के लिए कर सकें, तो हम अपने प्राकृतिक ईंधन में काफी बचत कर सकते हैं।

नाभिकीय प्रतिकरण का स्थान भट्टी का-सा है। केवल इस एक अन्तर को छोड़कर बाकी सारा नाभिकीय बिजली घर ठीक वैसे ही दूसरे बिजलीघरों की तरह होता है, जैसे कि आजकल हर जगह बने हुए हैं। नाभिकीय बिजलीघर में भी भाप से चलने वाली मशीनें बिजली पैदा करने वाली मशीनों को घुमाती हैं; और उनसे तैयार होने वाली बिजली तारों के द्वारा उन स्थानों तक पहुँचायी जाती है, जहाँ उस बिजली का उपयोग होता है। अन्तर केवल इतना है कि मामूली बिजलीघरों में पहले पहल ताप कोयला जलाने से उत्पन्न होता है और नाभिकीय बिजलीघर में यह ताप नाभिकों में होने वाले परिवर्तन से, अर्थात् नाभिकों के

विखंडन या संगलन से उत्पन्न होता है।

एक सबसे बड़ी समस्या यह है कि जो लोग नाभिकीय प्रतिकरण के आसपास काम कर रहे होते हैं, उनको खतरनाक विकिरणों से किस प्रकार बचाया जाय। उनको बचाने का उपाय यह है कि प्रतिकरण के सब ओर कंकरीट या सीसे की खूब मोटी दीवार रखी जाय। इसके कारण प्रतिकरण की बनावट बहुत भारी-भरकम और भद्दी हो जाती है। इसलिए इस बात की सम्भावना बहुत थोड़ी है कि परमाणु शक्ति का उपयोग विमानों या मोटर गाड़ियों को चलाने या लोगों के घरों को गर्म रखने के लिए किया जा सके। परन्तु इस प्रकार की बहुत भारी भरकम ढाल या रोक नाभिकीय बिजलीघर तैयार करने में या किसी पनडूब्बी या किसी बड़े पानी के जहाज का इंजिन तैयार करने में बड़ी रुकावट नहीं है।



प्रतिकरण बिजलीघर को चलाने के लिए ताप प्रदान करता है।

नाभिकीय बिजलीघर की सामान्य व्यवस्था बहुत कुछ उस तरह की हो सकती है, जैसी ऊपर चित्र में दिखाई गई है। भाप उत्पन्न करने के लिए जो पानी खौल रहा होता है, वह प्रतिकरण

के सीधे सम्पर्क में नहीं आना चाहिए, क्योंकि उससे यह खतरा है कि हानिकारक विकिरण उस पानी के साथ आ जायेंगे। इसके लिए एक अलग द्रव पदार्थ का उपयोग किया जाना चाहिए, जो ताप को प्रतिकरण से बायलर तक ला सके।

नाभिकीय संयन्त्र का एक बहुत अच्छा उपयोग पनडुब्बियों को चलाने के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार की पनडुब्बी पानी के अन्दर ही अन्दर लगभग असीम दूरी तक बिना पानी की सतह के ऊपर आये यात्रा करती रह सकती है। इस काम के लिए एक इंजिन बनाया गया था और पहले पहल उसकी जाँच-पड़ताल इडाहो के पहाड़ों में एक गुप्त स्थान पर, जो समुद्र से सैकड़ों मील दूर है, की गयी थी। १९५४ की ग्रीष्म ऋतु में इस इंजिन को जाँच के लिए पानी के अन्दर ही अन्दर अटलांटिक को पार करने के लिए इस्तेमाल किया गया था। उसके बाद उसी नमूने का एक दूसरा बिजली उत्पन्न करने वाला यन्त्र एक असली पनडुब्बी 'नौटीलस' में लगाया गया। नौटीलस पनडुब्बी विशेष रूप से इस ढंग की बनाई गयी थी कि उसमें परमाणु से चलने वाली मशीनें लगाई जा सकें। १९५५ के प्रारम्भिक दिनों में नौटीलस ने अपनी पहली परीक्षण यात्राएँ सफलतापूर्वक पूरी कर लीं। नाभिक शक्ति से चलने वाली एक दूसरी पनडुब्बी 'सी वोल्फ' भी उस समय तैयार की जा रही थी।

यह सच है कि नाभिकीय बिजलीघर में यूरेनियम या किसी अन्य नाभिकीय ईंधन की बहुत थोड़ी-सी मात्रा खर्च होती है, परन्तु यदि हम सारे देश में या सारे संसार में इस तरह के बहुत-से बिजलीघर तैयार कर दें, तो क्या उन सबके लिए काफी यूरे-

नियम हमें मिल सकेगा ? इस समय संसार में केवल थोड़े-से ही स्थान ऐसे हैं, जहाँ बड़ी मात्रा में यूरेनियम खानों में से निकाला जाता है। यह ठीक है कि अभी और भी यूरेनियम की नयी-नयी बड़ी खानें मिल सकती हैं, इसीलिए संसार के सभी बड़े-बड़े देशों की सरकारें उन लोगों को बड़ी-बड़ी राशियाँ पुरस्कार के रूप में देने का वायदा करती हैं, जो यूरेनियम की नयी खानों का पता दें। आजकल कितने ही खोज करने वाले लोग अपने साथ हल्के-हल्के 'गीगर गणक' लिए सारे देश को इस आशा में छानते फिरते हैं कि शायद उन्हें कहीं यूरेनियम की नयी खानों का पता मिल जाय।

इस बीच में यह भी सम्भव है कि नयी वैज्ञानिक खोजों से हम और ऐसी नयी नाभिकीय सामग्रियाँ तैयार कर सकें, जो हमारी आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ हों। इडाहो में परमाणु ऊर्जा आयोग की ओर से बनाने गये एक कारखाने में एक ऐसा प्रतिकरण (रिएंक्टर) लगाया गया है, जो शक्ति उत्पन्न करने के साथ-साथ उसी समय नाभिकीय ईंधन भी तैयार करता है। इस ईंधन का उपयोग दूसरे प्रतिकरणों में किया जा सकता है। यह कारखाना १९५१ से काम कर रहा है। यह बात सुनने में ऐसी ही असम्भव जान पड़ती है, जैसे कोई कहे कि एक ऐसी भट्ठी है, जिसमें कोयला जलता है और उसके साथ ही साथ उसमें नया कोयला तैयार भी होता जाता है। फिर भी यह बात है सही। इस प्रतिकरण को 'उत्पादक प्रतिकरण' नाम दिया गया है। यह नाम इसलिए दिया गया है कि यह सक्रिय पदार्थ को उसी प्रकार स्वयं उत्पन्न करता जाता है जिस प्रकार

पशु अपनी ही भाँति के नये पशुओं को उत्पन्न करते जाते हैं।

एक प्रकार के उत्पादक प्रतिकरण में थोड़ा-सा यू २३५ थोरियम के साथ मिलाया जाता है। थोरियम तत्व संसार में यूरेनियम की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ी मात्रा में पाया जाता है। यूरेनियम २३५ के विखंडन से मन्द गति वाले न्यूट्रोन पैदा होते हैं। जब इस प्रकार का कोई न्यूट्रोन थोरियम के नाभिक में जा घुसता है, तब उसमें से एक के बाद एक करके दो बीटा कण छिटककर बाहर निकलते हैं। इन कणों के निकलने के बाद बचा हुआ नाभिक यूरेनियम का एक नया आइसोटोप यू २३३ रह जाता है। यू २३३ की एक बड़ी उपयोगिता यह है कि यह ठीक यू २३५ और प्लूटोनियम की ही तरह विखंडन द्वारा फाड़ा जा सकता है। इस यू २३३ को उत्पादक प्रतिकरण में से निकाला जा सकता है और इसका उपयोग किसी दूसरे अलग प्रतिकरण में किया जा सकता है। इस ढंग से उत्पादक प्रतिकरण लगातार नया नाभिकीय ईंधन तैयार करता रहता है।

परमाणु ऊर्जा आयोग (एटमिक ऐनर्जी कमीशन) का कथन है कि अब तक संसार में जितने यूरेनियम और थोरियम का पता चल चुका है, केवल उतने से ही संसार की ऊर्जा की आवश्यकताएं लगभग दो हजार वर्ष तक पूरी को जा सकनी चाहिएँ। यह भी सम्भव है कि संगलन की प्रतिक्रियाओं का भी शक्ति उत्पन्न करने के लिए उपयोग करने का कोई उपाय ढूंढा जा सके। यदि ऐसा उपाय ढूंढ लिया जाये, तो उससे हमारे पास नाभिकीय ईंधन की लगभग असीम मात्रा हो जायेगी।

इसके बाद भी एक प्रश्न बाकी बच जाता है। क्या नाभि-

कीय शक्ति इतने सस्ते ढंग से उत्पन्न की जा सकती है कि यह शक्ति उत्पन्न करने के लिए कोयले का स्थान ले सके ? यदि उत्पादक प्रतिकरण की धारणा सफल सिद्ध हो जाये, तो निश्चय ही हमें नाभिकीय ईंधन की कोई कमी नहीं पड़ेगी और इस ईंधन की लागत भी बहुत कम होगी। परन्तु और भी कई विचारणीय समस्याएँ हैं। नाभिकीय बिजलीघरों का निर्माण बहुत मँहगा होगा और उनको चलाना भी काफी खर्चीला पड़ेगा। इसके अतिरिक्त बहुत-सी खतरनाक सामग्रियों का लाना ले-जाना, उठाना-रखना इत्यादि इस प्रकार करना पड़ेगा कि जिससे काम करने वाले लोगों या आसपास रहने वाले लोगों को किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचे।

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी कुछ ही वर्षों के अन्दर अनेक नाभिकीय बिजलीघर अवश्य चालू हो जायेंगे। इस प्रकार का सबसे बड़ा एक बिजलीघर अमरीका में पिट्सबर्ग के पास बनाया जा रहा है। इसके बनाने की लागत साढ़े आठ करोड़ डालर अर्थात् लगभग ४५ करोड़ रुपये होगी और यह एक लाख आबादी के शहर की आवश्यकताओं को पूरा करने लायक बिजली उत्पन्न कर सकेगा। इंग्लैंड के उत्तर पश्चिमी भाग में भी एक नाभिकीय बिजलीघर बनाया जा रहा है, जो शायद इससे भी पहले बनकर तैयार हो जाय। यूरोप के कई अन्य देश और कनाडा भी इस प्रकार के प्रतिकरण निकट भविष्य में ही बनाने की योजनाएं तैयार कर रहे हैं।

इनमें से अधिकांश देशों में, और विशेष रूप से अमरीका में, बिजली पहले से ही बहुत काफी है और पर्याप्त सस्ती है। परन्तु

इस प्रकार की नाभिकीय ऊर्जा से पिछड़े हुए देशों को बहुत अधिक लाभ होने की सम्भावना है। इन देशों की उन्नति बहुत धीरे-धीरे होने का मुख्य कारण यह है कि इन देशों में बिजली या शक्ति की बहुत कमी है। इन देशों में अब तक भी अधिकांश काम पशुओं या मनुष्यों के शारीरिक श्रम से ही किया जाता है। अमरीका तथा दूसरे देश एशिया और अफ्रीका के पिछड़े हुए अविकसित देशों को नाभिकीय सामग्रियों तथा शिल्प सम्बन्धी सहायता दे सकते हैं। इसके फलस्वरूप संसार के पिछड़े हुए उपेक्षित भाग भी समृद्ध हो जायेंगे। कुछ थोड़े-से वर्षों में ही वे उससे कहीं अधिक उन्नति कर सकेंगे, जितनी उन्होंने पिछली कई शताब्दियों में नहीं की है।

अध्याय | १४

परमाणुओं के व्यावहारिक उपयोग

कल्पना कीजिये कि आप एक विशालकाय भवन के अन्दर खड़े हैं और आपके सामने हरे रंग से रँगी हुई कंकरीट की तीन मंजिले मकान के बराबर ऊँची घनाकृति रचना है। ऊपर एक ऊँचे प्लेट-फार्म पर मजदूर और अन्य कर्मचारी काम करते दीख रहे हैं। वे लोग घनाकृति कंकरीट के अन्दर बने हुए सैकड़ों छेदों में से किसी एक में धातु की एक लम्बी छड़ अन्दर धकेल रहे हैं। इस घनाकृति की हरी दीवार के साथ-साथ तरह-तरह के नलों और बिजली का तारों का अजीब-सा जाल बिछा हुआ है। मुख्य रचना से एक ओर हटकर स्विच बोर्ड लगा हुआ है, जहाँ से स्विचों के खोलने और बन्द करने की आवाज आ रही है और अलग-अलग रंग के सिगनल लैम्प चमकते दीख पड़ते हैं। बिजली की मोटर की 'घूं घूं' की आवाज भी सुनायी पड़ रही है।

विज्ञानवेत्ता अपने प्रयोगशाला के कोट पहने पास खड़े हैं और यन्त्रों के डायलों को ध्यान से देख रहे हैं और बीच-बीच में कभी-कभी स्विचों को घुमाते या बन्द करते हैं, जिससे वे परिणाम का अच्छी तरह निरीक्षण कर सकें और उसको नोट कर सकें। इस घनाकृति रचना के अन्दर दूरी पर सात फीट मोटी रक्षक कंकरीट की दीवारों के पीछे यूरेनियम के शंख, महाशंख परमाणु विखंडन द्वारा फट रहे हैं और उनसे निरन्तर, लेकिन बिना शोर किये

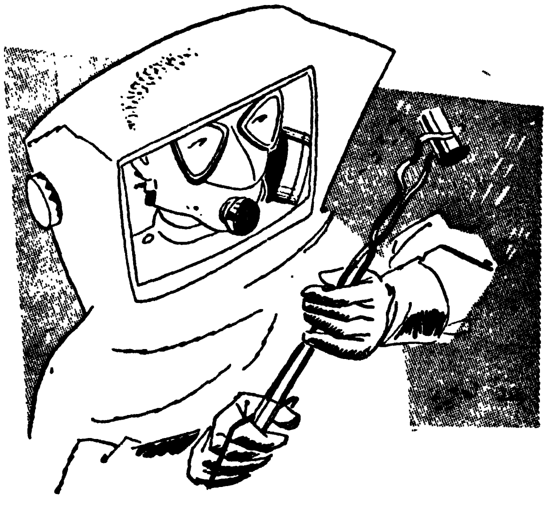
ऊर्जा बाहर निकल रही है।

यह है परमाणु ऊर्जा आयोग का प्रतिकरण, जो टैनैसी राज्य में ओक रिज नामक स्थान पर बना हुआ है। यह प्रतिकरण मशीनों को जलाने या घरों को गर्म रखने के लिए प्रयोग में नहीं लाया जाता। यह एक ऐसा काम कर रहा है, जो इससे पहले कभी सम्भव ही नहीं हुआ था। यह रासायनिक तत्वों के नये और उपयोगी आइसोटोप तैयार कर रहा है।

लगभग २५ वर्ष पहले साइक्लोट्रोन मशीन का आविष्कार हुआ था। उस समय भौतिकी शास्त्री इन मशीनों का उपयोग अलग-अलग तत्वों के परमाणुओं पर तीव्रगामी कणों से चोट करने के लिए करते थे; और जैसा आपको मालूम ही है इस प्रकार चोट करने से बहुत बार परमाणुओं के नाभिकों में परिवर्तन हो जाता था। जब एक बार मशीन को रोक दिया जाता था, तब ये नये बने हुए पदार्थ आम तौर से उसी दशा में बने रहते थे, जैसे वे नाभिकीय परिवर्तन के बाद बन गये थे। परन्तु कुछ मामलों में ये नये पदार्थ साइक्लोट्रोन मशीन में से निकाले जाने के बाद काफी समय तक रेडियो-सक्रिय तत्वों की भाँति फूटते रहते थे। ये पदार्थ रेडियम या थोरियम या धरती पर पाये जाने वाले अन्य और कोई रेडियो-सक्रिय तत्व नहीं थे। ये मामूली तत्वों के ही नये आइसोटोप थे। उदाहरण के लिए जब मामूली नमक (सोडियम क्लोराइड, Nacl) पर भारी हाइड्रोजन के किसी तीव्रगामी नाभिक द्वारा चोट की जाती है, तो मामूली सोडियम के परमाणुओं, सो २३ में से कुछ बदलकर सो २४ बन जाते हैं। यह आइसोटोप सो २४ प्राकृतिक नमक में बिलकुल नहीं पाया जाता। यह आइ-

सोटोप रेडियो-सक्रिय होता है और जब यह अपने आप फूटता रहता है, तब इसमें से बीटा और गामा किरणें निकलती हैं। इस आइसोटोप का अर्धआयुष्य लगभग १५ घंटे का है। सो २४ रेडियो सोडियम कहलाता है।

मनुष्य द्वारा तैयार किये गये इस प्रकार के रेडियो-सक्रिय आइसोटोप रेडियो आइसोटोप कहलाते हैं। अब तक अलग-अलग ढंग के लगभग एक हजार रेडियो आइसोटोप तैयार किये जा चुके हैं। इनमें लगभग सभी ज्ञात रासायनिक तत्वों के आइसोटोप हैं। इस समय हमारे पास रेडियो लौह (रेडियो आइरन), रेडियो कोबाल्ट, रेडियो स्वर्ण तथा अन्य अनेक आइसोटोप हैं।



रेडियो-सक्रिय पदार्थों को सँभालने वाला व्यक्ति रक्षक पोशाक पहने हुए है।

इस समय क्योंकि हमारे पास प्रतिकरण यन्त्र चालू हैं, इसलिए विज्ञानवेत्ताओं के पास पहले की अपेक्षा कहीं बड़ी मात्रा में रेडियो आइसोटोप तैयार करने का साधन विद्यमान है। जिस पदार्थ के किसी टुकड़े को सक्रिय करना होता है, उसे अल्यूमिनियम के एक छोटे-से डब्बे में रखकर कंकरीट की दीवार में बने हुए बहुत-से छेदों में से किसी एक में से प्रतिकरण के अन्दर धकेल दिया जाता है। अब इस पदार्थ को प्रतिकरण में कुछ दिन तक या कुछ महीनों तक 'पकने' दिया जाता है। इस समय न्यूट्रोन उस पदार्थ के आर-पार होते रहते हैं। जब उस पदार्थ के पर्याप्त परमाणु सक्रिय हो चुकते हैं, तब उसे प्रतिकरण में से बाहर निकाल लिया जाता है और एक विशेष कमरे में सँभालकर रख दिया जाता है। इस कमरे की दीवारें भी बहुत मोटी हैं और इस ढंग से बनायी गयी हैं कि विकिरण (रेडियेशन) उनके पार न पहुँच सके।

इन सोष्म (हाट अर्थात् गर्म) पदार्थों को उठाने-रखने में बड़ी सावधानी बरती जानी चाहिये, ताकि कार्यकर्ताओं को खतरनाक न्यूट्रोनों तथा इन पदार्थों से निकलने वाले अन्य विकिरणों से हानि न पहुँचे। वस्तुतः इन पदार्थों को सीधा हाथ से कभी उठाया या रखा नहीं जाता, क्योंकि इनमें से कुछ रेडियो आइसोटोप ऐसे हैं, कि उनको सीधा हाथ से छूना प्राणघातक सिद्ध हो सकता है। इसलिए इन रेडियो आइसोटोपों को उठाने, रखने, हिलाने और समूची रासायनिक प्रक्रियाओं में से गुजारने का सारा काम इस ढंग से किया जाता है कि मनुष्य कार्यकर्ता किसी भी समय उस पदार्थ के दो या तीन गज से अधिक निकट नहीं पहुँचता।

वह कमरा, जिसमें रेडियो आइसोटोप सँभालकर रखे जाते हैं, एक जादू के ढंग का-सा विलक्षण बाजार है। जब कर्मचारियों को उसमें से कोई चीज छाँटनी या निकालनी होती है, तो वे अपनी छोटी-सी गाड़ी लेकर उस कमरे के अन्दर नहीं जाते, बल्कि एक साथ वाले कमरे में से शीशे की एक बड़ी दीवार के पीछे खड़े होकर इन आइसोटोपों को ढूँढने, छाँटने और उठाने इत्यादि का सारा काम करते हैं। इसके लिए वे एक विचित्र ढंग की मशीनों का प्रयोग करते हैं, जो रोबट (यन्त्र चालित मनुष्य) की तरह होती हैं। इनमें धातु के हाथ और अंगुलियाँ होती हैं, जिनमें इस तरह जोड़ लगे हुए होते हैं कि वे आवश्यकतानुसार चीजों को उठा और रख सकती हैं। कर्मचारी लोग एक रक्षक द्रव की टंकी, जो शीशे की बनी होती है, के पार देखकर या एक झुके हुए दर्पण में देखकर, या कभी-कभी एक विशेष टेलीविजन यन्त्र में देखकर इन यान्त्रिक हाथों को आवश्यकतानुसार आगे-पीछे चलाते हैं, और उनके द्वारा उस सोष्म कमरे में काम करवाते हैं।

इस कमरे में हर एक काम बाहर से ही यन्त्र द्वारा किया जाता है। कर्मचारी एक हत्थे को खींचता है और वह देखता रहता है कि कंकरीट की बनी हुई एक आलमारी में से धीरे-धीरे एक दराज खुलती है। इस दराज के खुलते ही तुरन्त चेतावनी की घंटी बजनी शुरू हो जाती है। एक गीगर गणक, जो अल्फा, बीटा या गामा किरणों के कारण चालू हो जाता है, तब तक घंटी को बजाता रहता है, जब तक कि वह दराज खुली रहती है। कर्मचारी तब और कई नियन्त्रक हाथों को आवश्यकतानुसार घुमाता है; और उसकी गुलाम इस मशीन के लोहे के हाथ

उस दराज में से सक्रिय पदार्थ की एक बोतल को उठाते हैं, उसकी डाट खोलते हैं और एक छोटी-सी नली के द्वारा उसमें से थोड़ा-सा द्रव पदार्थ निकालकर एक दूसरी छोटी-सी बोतल



सक्रिय पदार्थ को उठाने-रखने के लिए कर्मचारी यान्त्रिक हाथों का उपयोग करता है।

में भर देते हैं। इसके बाद यह बोतल सीसे के बने हुए एक बहुत मोटे डब्बे के अन्दर रख दी जाती है और उस स्थान को भेज दी जाती है जहाँ उसका प्रयोग किया जाना है। यदि आइसोटोप

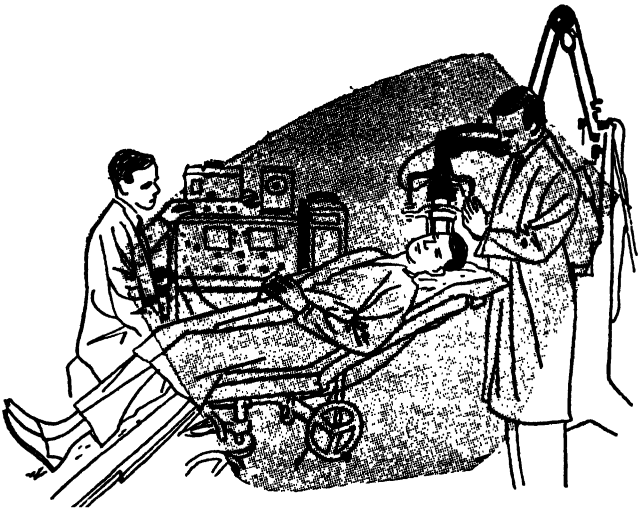
का अर्धआयुष्य बहुत थोड़ा होता है, तो उस आइसोटोप को विमान द्वारा उपयोग करने वाले व्यक्ति के पास शीघ्रता से भेजा जाता है।

१९४६ में ओक रिज में यह विचित्र बाजार पहले पहल खोला गया था। तब से लेकर अब तक लगभग चालीस हजार सौदे बाहर भेजे जा चुके हैं। फिर भी रेडियो आइसोटोप इतने शक्तिशाली होते हैं कि इस सारे सौदे में जितने सक्रिय परमाणु थे, उन सबका भार कुल मिलाकर आधी छटाँक से भी कम था। ओक रिज में एक वर्ष में जितने सक्रिय आइसोटोप तैयार किये जाते हैं, उनमें सारी दुनियाँ में विद्यमान परिष्कृत रेडियम की कुल मात्रा से भी अधिक सक्रियता है; फिर भी इन आइसोटोपों की लागत रेडियम की लागत के एक हजारवें भाग से भी कम है।

जब रेडियो आइसोटोप ग्राहक के पास पहुँचा दिये जाते हैं, तब उनका क्या उपयोग होता है, यह बात इसपर निर्भर है कि उन रेडियो आइसोटोपों से क्या काम लिया जाना है। इनका मुख्य उपयोग रोगों के इलाज और वैज्ञानिक अनुसन्धान से लिए किया जाता है। जिन आइसोटोपों से प्रचंड किरणें निकलती हैं, उनका उपयोग चिकित्सक शरीर के रुग्ण सैलों (कोष्ठों) को नष्ट करने के लिए करते हैं। अपेक्षाकृत कम शक्ति वाले और कम विनाशक आइसोटोपों का प्रयोग अनुसन्धान के लिए अन्वेषक (ट्रेसर) के रूप में किया जाता है। ये परमाणु जहाँ-जहाँ से गुजरते हैं, वहाँ-वहाँ अपने चिह्न छोड़ते जाते हैं, जिनका विज्ञान-वेत्ता लोग अपने सूक्ष्म उपकरणों से पता चला लेते हैं। इंजी-

नियरों ने भी इन आइसोटोपों का उपयोग किया जैसा कि आप आगे चलकर इसी अध्याय में देखेंगे।

चिकित्सक लोग इन आइसोटोपों का उपयोग अन्वेषक के रूप में किस प्रकार करते हैं, यह समझने के लिए हमें यह देखना उचित होगा कि जब कोई रोगी मस्तिष्क में अर्बुद (ट्यूमर) हो जाने के कारण कष्ट पा रहा होता है, तब क्या किया जाता है। मस्तिष्क में अर्बुद हो जाने से यह संकट उपस्थित हो जाता है कि ज्यों-ज्यों वह अर्बुद बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों वह मस्तिष्क पर दबाव डालता जायेगा। उससे रोगी को बड़ी यन्त्रणा होगी और कुछ समय बाद रोगी की मृत्यु हो जायेगी। ऐसे समय



डाक्टर लोग शरीर में रुग्ण सैलों का पता चलाने के लिए विकिरण-सूचक यन्त्र का उपयोग करते हैं।

चिकित्सक रोगी के शरीर में रेडियो फारफोरस की थोड़ी-सी मात्रा का इंजेक्शन दे देता है। फारफोरस रक्त के प्रवाह में मिलकर शरीर के सब भागों तक पहुँच जाता है। परन्तु किसी कारण इसका अधिकांश भाग, यदि शरीर में कहीं अर्बुद हो, तो उस अर्बुद में इकट्ठा हो जाता है। विकिरण सूचक (रेडियेशन डिटैक्टर) यन्त्र को सिर के ऊपर आगे-पीछे, चारों ओर, घुमाकर डाक्टर यह बतला सकता है कि मस्तिष्क में अर्बुद है, या नहीं; और अगर है, तो वह ठीक किस जगह है। यह सब पता चलने के बाद आपरेशन करके उस अर्बुद को निकाला जा सकता है।

रेडियो आयोडीन भी इसी प्रकार परमाणु प्रतिकरण यन्त्र में तैयार होती है। इस रेडियो आयोडीन की सहायता से चिकित्सक लोगों को थाइरायड ग्रंथि के रोगों का इलाज करने में सहायता मिलती है। थाइरायड ग्रंथि गले में होती है और यह स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है। रोगी को ऐसी दवा पीने को दी जाती है, जिसमें बहुत थोड़ी-सी रेडियो आयोडीन होती है। इस सक्रिय आइसोटोप के अधिकांश भाग को थाइरायड ग्रंथि चूस लेती है। रेडियो आयोडीन की जितनी मात्रा इस ग्रंथि में जमा हो जाती है, उसका पता बाहर से ही विकिरण सूचक यन्त्र से चल जाता है; और इससे डाक्टर को यह मालूम हो जाता है कि थाइरायड ग्रंथि की दशा कैसी है।

बहुत लम्बे समय से, शरीर में हो गयी अर्बुद या कैन्सर जैसी अस्वस्थ वृद्धियों को नष्ट करने के लिए चिकित्सा के रूप में रेडियम से निकलने वाली ऐक्स किरणों और गामा किरणों का उप-

योग किया जाता रहा है। इन किरणों का उपयोग उसी दशा में किया जा सकता है, जबकि इस प्रकार की वृद्धि बहुत गहरी न हो। यदि ऐसी वृद्धि बहुत गहरी हो, तो काफी गहराई तक पर्याप्त मात्रा में विकिरण पहुँचने से पहले ही शरीर की त्वचा तथा अन्य बाहरी अंशों को हानि पहुँच जायेगी। हाल ही में नाभिकीय प्रतिकरण में तैयार की गयी सैसियम धातु की दो छोटी-छोटी गोल पतरियाँ संसार के एक सबसे शक्तिशाली चिकित्सा-यन्त्र को तैयार करने में इस्तेमाल की गयी थीं। इन पतरियों की लागत केवल कुछ हजार डालर थी। परन्तु इस मशीन से इतना अधिक विकिरण निकलता है, जितना दो करोड़ डालर कीमत के रेडियम से निकल पाता।

पहले के दिनों में जब डाक्टरों को शरीर के अन्दर गहराई में स्थित किसी अर्बुद या कैन्सर जैसी वृद्धि का इलाज करना होता था, तो वे उस वृद्धि में किसी रेडियो-सक्रिय पदार्थ का एक छोटा-सा 'बीज' प्रविष्ट करा देते थे। वह बीज उस वृद्धि के अन्दर से ही किरणें बाहर फेंकता रहता था और इस प्रकार अपना काम करता रहता था। कुछ समय बाद इस बीज को इसलिए बाहर निकालना पड़ता था, कि जिससे अधिक विकिरण के कारण शरीर को नुकसान न पहुँचे। परन्तु अब डाक्टरों के पास नये-नये रेडियो आइसोटोप हैं। डाक्टर उनमें से ऐसे रेडियो आइसोटोप का चुनाव कर सकता है, जिसे अपना काम कर चुकने के बाद फिर बाहर निकालने की आवश्यकता न पड़े। इस प्रकार का एक आइसोटोप रेडियो स्वर्ण है, जिसका अर्धआयुष्य केवल ३ दिन का होता है। इस आइसोटोप की बहुत छोटी-छोटी कनियाँ

अर्बुद के अन्दर घुसेड़ दी जाती है। असल में ये कनियाँ एक विशेष प्रकार की बन्दूक से दागकर अर्बुद के अन्दर प्रविष्ट करा दी जाती हैं। जितनी देर में इलाज पूरा हो चुकता है, उतनी देर में स्वर्ण की सक्रियता घटकर लगभग शून्य के बराबर हो जाती है। फिर ये छोटी-छोटी कनियाँ शरीर में स्थायी रूप से ज्यों की त्यों रहने दी जा सकती हैं और उनसे रोगी को कोई हानि नहीं होती।

और भी ऐसी अनेक विधियाँ हैं, जिनके द्वारा रोगों की चिकित्सा के लिए रेडियो आइसोटोपों का उपयोग किया जा रहा है; और अभी भी चिकित्सा के लिए रेडियो आइसोटोपों के प्रयोग की नयी-नयी पद्धतियाँ खोजी जा रही है। संसार भर में चिकित्सकों द्वारा रेडियो आइसोटोपों का अधिकाधिक उपयोग करने से मनुष्य जाति के कष्टों में काफी कमी हो जायेगी और उसका अर्थ यह होगा कि लोग अधिक समय तक अधिक स्वस्थ और उपयोगी जीवन व्यतीत कर सकेंगे। औषध-अनुसन्धान विज्ञानवेत्ताओं का कथन है कि सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र के आविष्कार के बाद रेडियो आइसोटोपों का आविष्कार चिकित्सा क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण आविष्कार है।

शरीर के अन्दर रेडियो आइसोटोप ठीक उसी प्रकार काम करते हैं, जिस प्रकार उस तत्व के मामूली आइसोटोप काम करते हैं। इस कारण यह बता पाना सम्भव हो सका है कि जब हम कोई पदार्थ खाते हैं, तो उसका शरीर के अन्दर क्या होता है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति को ऐसा नमक खिलाया जाय, जिसमें रेडियो सोडियम के कुछ परमाणु हों; तो विज्ञानवेत्ता इस बात का ठीक-ठीक पता चला सकते हैं कि वह नमक शरीर

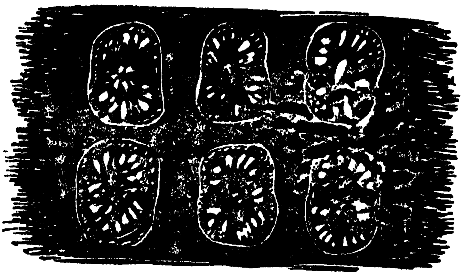
के किस-किस भाग में जाता है और शरीर में कितनी देर तक रहता है। इस ढंग से खोजकर उन्होंने यह पता चला लिया है कि भोजन में से ज्यों-ज्यों शरीर नये-नये पदार्थ लेता रहता है और पुराने पदार्थों को निकालता रहता है, त्यों-त्यों शरीर का प्रत्येक भाग निरन्तर नया और नया होता रहता है। इस सम्बन्ध में आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि मानव शरीर लगभग सारा का सारा हर वर्ष नया बन जाता है; यहाँ तक कि हड्डियाँ भी इसी ढंग से बनती रहती हैं। इस शरीर के नये बनते रहने का एक अपवाद लोहा है। यह लोहा मुख्य रूप से लाल रक्त कोष्ठों में पाया जाता है; और यह शरीर में अन्य तत्वों की अपेक्षा कहीं अधिक लम्बे समय तक टिका रहता है।

रेडियो आइसोटोप किसानों और पशु पालने वालों की भी सहायता करते हैं। ब्रुकहेवन की प्रयोगशाला में, जो विशालकाय कोसमोट्रोन मशीन से बहुत दूर नहीं है, कृषि विज्ञानवेत्ताओं ने रेडियो कोबाल्ट का एक बड़ा टुकड़ा जमीन में गाड़ दिया और उसके बाद उन्होंने उसके चारों ओर घेरे में थोड़ी-थोड़ी दूर पर अनाज बोया। उन्होंने यह देखा कि गामा किरणों के प्रभाव से बिलकुल नयी किस्म के अनाज पैदा हुए। इस प्रकार के परीक्षणों से विशेषज्ञों को यह आशा है कि वे अबकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी खाद्य फसलें उगाने के उपाय खोज निकालेंगे।

प्रकृति की एक सबसे बड़ी पहेली यह है कि हरे पौधे पानी और कार्बनडायोक्साइड से रासायनिक पदार्थ बनाने के लिए सूर्य की ऊर्जा का उपयोग किस प्रकार करते हैं। रेडियो कार्बन का प्रयोग करके खोज करने वाले लोग इस प्रक्रिया को कुछ और

अच्छी तरह समझ पाने में सफल हुए हैं। इस प्रकार के परीक्षणों में पौधों को ऐसी कार्बनडायोक्साइड में साँस लेने दिया गया, जिसके अणु सक्रिय आइसटोपों से बने थे। केवल एक मिनिट के बाद सक्रिय परमाणु उन पचास से अधिक अलग-अलग समासों में दिखाई पड़े, जिनसे वह पौधा बना हुआ था।

जब टमाटर के पौधों में रेडियो जस्त की थोड़ी-सी मात्रा की खाद दी गयी, तो यह जस्त टमाटरों के बीज में जाकर जमा हो गया। ऐसे टमाटर का एक टुकड़ा काटकर फोटो की फिल्म पर रखा गया, जिससे उसके अन्दर विद्यमान सक्रिय जस्त के परमाणुओं से निकलने वाली किरणों के कारण उस फिल्म पर



टमाटर के टुकड़े अपना चित्र अपने आप उतार देते हैं।

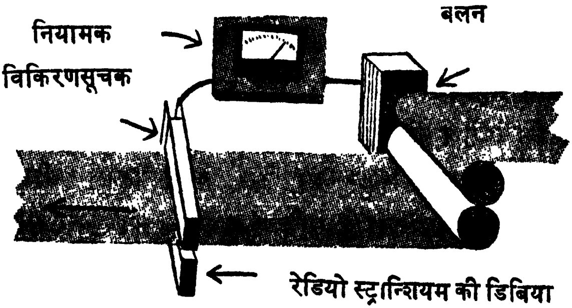
अपने आप उस टुकड़े की फोटो आ गयी। सम्भवतः इस प्रकार के परीक्षणों से यह पता चल जायेगा कि फसलों के उत्पादन को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है और इससे संसार के उन भागों में, जहाँ खाद्य पदार्थ थोड़े होते हैं, अकाल पड़ने से रोका जा सकेगा।

अनेक बार फसलें कीड़ों के कारण खराब हो जाती हैं। इस क्षेत्र में भी रेडियो आइसोटोप सहायता कर सकते हैं। इंग्लैंड की एक सरकारी प्रयोगशाला में विज्ञानवेत्ताओं ने कीटाणुओं को एक रेडियो-सक्रिय रंग से पोत दिया और उनको एक खेत में शलजम के पौधों पर छोड़ दिया। इसके बाद गीगर गणकों से यह पता चल गया कि ये विनाशक कीड़े किस प्रकार एक पौधे से दूसरे पौधे पर पहुँचते हैं। इन कीड़ों की रोकथाम के उपाय ढूँढने के लिए यह पहला उपयोगी कदम है। इस प्रकार निकाले गये परिणामों से यह भी पता चल गया है कि बीमारियों को ले जाने वाले कीटाणु कितने समय तक जीवित रहते हैं; वे किस प्रकार उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचते हैं; और क्या खा-कर वे जीवित रहते हैं।

जब किसी खेत या पशुशाला में खाद्य पदार्थ तैयार कर भी लिये जाते हैं, उसके बाद भी यह सम्भावना बनी रहती है कि कहीं वह अन्न, फल और सब्जियाँ, दूध और उससे बने हुए पदार्थ और मांस इत्यादि बिगड़कर नष्ट न हो जायें। इस सम्बन्ध में भी परमाणु ऊर्जा का उपयोग किया जा सकता है। यदि ताजे आलुओं पर जरा-सी देर के लिए प्रतिकरण यन्त्र से निकली हुई किरणें छोड़ दी जायें, तो वे आलू दो वर्ष तक सरलता से रखे जा सकते हैं; न तो वे सड़ेंगे, न उनमें अंकुर ही फूटेंगे और साथ ही खाद्य के रूप में उनका उपयोग करने से किसी प्रकार की हानि भी न होगी। इस प्रकार की किरणें छोड़ने का व्यय प्रति सेर एक नये पैसे से भी कम पड़ता है। मिचिगन विश्व-विद्यालय में की गई खोजों से पता चला है कि यदि सूअर के

मांस पर रेडियो सैसियम से निकली हुई किरणें छोड़ी जायें, तो वह कीटाणु रहित हो जाता है और उसे लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

इन अन्वेषक आइसोटोपों का पहले पहल जिन लोगों ने उपयोग किया, उनमें इंजीनियर भी थे। इनका सबसे रोचक उपयोग यह है कि जब कोई धातु की चादर या कागज या प्लास्टिक तैयार किया जा रहा होता है, उस समय इन अन्वेषकों के द्वारा उसकी मोटाई ठीक-ठीक नापी जा सकती है और यदि वह अभीष्ट मोटाई से कुछ कम या अधिक हो, तो उसे ठीक ढंग से नियन्त्रित किया जा सकता है। लोहे के कारखानों में नयी बनती हुई धातु की चादर के नीचे रेडियो स्ट्रौन्शियम की एक छोटी-सी गोली रख दी जाती है। धातु की चादर इस गोली के ऊपर से आगे चलती जाती है। दूसरी ओर एक विकिरणसूचक यन्त्र लगा होता है, जिससे बीटा किरणों की शक्ति नापी जाती



सक्रिय परमाणु धातु या कागज की मोटाई को अपने आप नियन्त्रित करते रहते हैं।

है। इन बीटा किरणों की शक्ति की कमी या अधिकता इस बात पर निर्भर रहती है कि रेडियो स्ट्रौन्शियम के ऊपर से गुजरने वाली धातु की चादर कितनी मोटी या पतली है। यदि चादर पतली होगी, तो उसको पार करने वाली बीटा किरणें अधिक शक्तिशाली होंगी; और यदि चादर मोटी होगी, तो उसको पार करने वाली बीटा किरणें कम शक्तिशाली होंगी। यदि कभी इस चादर की मोटाई में कोई अन्तर पड़ जाये, अर्थात् मोटाई कम या अधिक हो जाये, तो विकिरणसूचक यन्त्र अपने आप मोटर के पास संकेत भेज देता है और वह मोटर स्वयं ही उन बेलनों को सख्त या ढीला कर देती है, जो चादर की मोटाई को नियत करते हैं। इस प्रकार बिना मशीनों को रोके ही इस चादर की मोटाई को इतना समान रखा जाता है कि उसमें एक इंच के दो हजारवें अंश जितना भी अन्तर नहीं पड़ने पाता। इस समय कितने ही कारखानों में इस प्रकार के कई सौ 'परमाणविक पहरेदार' काम कर रहे हैं।

मिट्टी के तेल के उद्योग में भी रेडियो आइसोटोप अनेक प्रकार से सहायता करते हैं। एक काम, जो वे कर सकते हैं, यह है कि वे तेल को ले जाने वाली लम्बी-लम्बी पाइप लाइनों में, जिनमें से कभी मिट्टी का तेल, कभी पैट्रोल और कभी अपरिष्कृत तेल गुजरता है, सन्देशवाहक का काम कर सकते हैं। ये पाइप लाइनें सैकड़ों मील लम्बी होती हैं और इनमें से अलग-अलग समय पर अलग-अलग ढंग का तेल भेजा जाता है। फिर भी अलग-अलग ढंग का तेल अलग-अलग टंकियों में भरा जाना चाहिये। अब काम करने वाले मजदूरों को किस तरह

पता चले कि एक प्रकार का तेल आना बन्द हो गया है और अब दूसरी तरह का तेल आना शुरू हो गया है। इसका बिलकुल आसान तरीका यह है कि जब पाइप में नई तरह का तेल भेजना शुरू किया जाये, उस समय उसमें थोड़ा-सा रेडियो सक्रिय तेल मिला दिया जाये। जब ये सक्रिय परमाणु पाइप लाइन के दूसरे सिरे पर पहुँचेंगे, तो वहाँ रखा हुआ एक विकिरणसूचक यन्त्र चालू हो जायेगा और यह पता चल जायेगा कि अब नयी तरह का तेल आना शुरू हो गया है। वहाँ पर काम करने वाला कर्मचारी उस तेल को अलग दूसरी टंकी में भेजना शुरू कर देगा। इस एक अकेले उपाय से अब तेल कम्पनियाँ प्रति वर्ष लगभग दस लाख डालर की बचत कर रही हैं।

यदि बहुत थोड़ी मात्रा में रेडियो आइसोटोप मोटरों के टायरों में या मशीन के पुर्जों में या फर्श पर इस्तेमाल किये जानेवाले सीमेंट में मिला दिये जायें, तो इंजीनियर लोग इस बात का ठीक-ठीक पता चला सकते हैं कि बहुत थोड़े-से समय के इस्तेमाल के बाद भी उन चीजों का कितना हिस्सा घिस गया है। इस प्रकार मोटर के इंजीनियरों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि खुली सड़क पर खूब तेजी से मोटर दौड़ाने में इंजिन जितना घिसता है, उससे तिगुना अधिक शहर की भीड़-भाड़ में रुक-रुककर चलाने से घिसता है।

रसायनवेत्ताओं का कथन है कि सक्रिय आइसोटोपों से निकली हुई किरणें उन्हें नये-नये प्लास्टिक, कीटाणुओं को मारने वाले विष तथा अन्य रासायनिक पदार्थ तैयार करने में सहायता दे सकती हैं। मिचिगन विश्वविद्यालय में इथाइलीन नामक गैस

पर रेडियो कोबाल्ट से निकली हुई गामा किरणें डाली गयीं। इससे इथाइलीन गैस पोली-इथाइलीन के रूप में बदल गयी। यह पोली-इथाइलीन ही वह नया प्लास्टिक है, जिससे आजकल दवाइयों तथा दूसरे तरल पदार्थों को रखने के लिए लचकीली बोतलें तैयार की जाती हैं। एक बड़ी तेल कम्पनी एक विशेष प्रयोगशाला तैयार कर रही है, जिसमें विकिरण द्वारा नयी-नयी चीजें तैयार करने के उपायों का विशेष रूप से अध्ययन किया जायेगा। इस प्रयोगशाला में इस्तेमाल के लिए किरणें एक रेडियो कोबाल्ट के टुकड़े में से ली जायेंगी, जो लगभग ढाई साल तक ब्रुकहेवन के प्रतिकरण यन्त्र में 'पकता' रहा है।

कला के क्षेत्र में भी ऐसा प्रतीत होता है कि नाभिकीय ऊर्जा बहुत कुछ कर सकती है। जापान में कला विशेषज्ञों ने रेडियो



पुरानी वस्तुओं की आयु का पता चलाने के लिए विज्ञानवत्ता रेडियो आइसोटोप का प्रयोग करते हैं।

कोबाल्ट से बने छोटे-छोटे ऐक्सरे यन्त्रों की सहायता से मन्दिरों में रखी हुई प्राचीन कांसे की मूर्तियों की पड़ताल की। वे उन मूर्तियों को अन्दर के भाग के भी चित्र लेने में सफल हुए। इस प्रकार के छाया व चित्रों से उन्हें यह मालूम हो गया कि वह सारी की सारी मूर्ति एक साथ ही ढली हुई है, या उसके अलग-अलग हिस्से अलग-अलग ढालकर बाद में जोड़ दिये गये हैं। उन्हें यह भी पता चल गया कि उन मूर्तियों में किसी एक ही धातु का प्रयोग किया गया है, या कई धातुएं मिलायी गयी हैं। बहुत बार इस प्रकार की जानकारी से यह खोज निकालना सम्भव होता है कि इन रचनाओं का बनाने वाला कलाकार कौन था और वह रचना लगभग कितने समय पूर्व तैयार की गयी थी।

कुछ वर्ष पहले शिकागो विश्वविद्यालय के विज्ञानवेत्ताओं ने प्राचीन अवशेषों और भवनों में पायी गयी पुरानी वस्तुओं की ठीक-ठीक आयु पता चलाने का एक उपाय खोज निकाला है। यह बड़ी निपुणतापूर्वक पद्धति 'कार्बन काल निर्णय' (कार्बन डेटिंग) कहलाती है, क्योंकि इस पद्धति में रेडियो कार्बन का उपयोग किया जाता है। रेडियो कार्बन का अर्धआयुष्य ५६०० वर्ष का होता है। यह आइसोटोप प्रतिकरण यन्त्र में नहीं बनाया जाता, अपितु यह सदा ही प्रकृति में अपने आप बनता रहता है। इसके बनने का कारण नाइट्रोजन परमाणुओं पर होने वाली कास्मिक किरणों की क्रिया है। नाइट्रोजन परमाणुओं पर कास्मिक किरणें पड़ने से ज्योंही रेडियो कार्बन बनता है, त्योंही पौधे उसे ग्रहण कर लेते हैं। इन पौधों को प्राणी खाते हैं और इस प्रकार यह सक्रिय पदार्थ उनके शरीरों में पहुँच जाता है।

जब कोई पौधा या प्राणी मरकर निर्जीव हो जाता है, तब उसमें नया ताजा रेडियो कार्बन पहुँचना बन्द हो जाता है, और उसके बाद उस रेडियो कार्बन में से सक्रिय परमाणु धीरे-धीरे टूटकर गिरने शुरू हो जाते हैं। इस प्रकार किसी भी पुराने पौधे या प्राणी में शेष बची हुई रेडियो सक्रियता को नापकर विज्ञानवेत्ता यह बतला सकते हैं कि वह पौधा या प्राणी कितने समय पहले जीवित था। इसी विधि से पता चलाकर यह निश्चय किया गया है कि मिश्र के मकबरों (पीरामिडों) में पाये गये कपड़े, अनाज और लकड़ियाँ लगभग ४५०० वर्ष पुरानी हैं। दक्षिणी फ्रांस की एक गुफा में पाये गये कुछ पदार्थ लगभग पन्द्रह हजार वर्ष पुराने हैं। इससे अधिक पुरानी कोई वस्तु अभी तक नापी नहीं गयी।

अमरीका का परमाणु ऊर्जा आयोग आजकल रेडियो आइसोटोपों के उत्पादन और उनके प्रयोग करने के उपकरणों पर प्रति वर्ष ६ करोड़ डालर व्यय कर रहा है। और प्रति वर्ष लगभग पाँच लाख डालर की कीमत के ये रेडियो सक्रिय पदार्थ बेचे जाते हैं। इन रेडियो आइसोटोपों के प्रयोग द्वारा विभिन्न उद्योग प्रतिवर्ष इससे लगभग २०० गुनी राशि की बचत कर पाने में सफल हो रहे हैं।

इसी बीच बहुत-से देशों में नये प्रतिकरण यन्त्र बनाये जा रहे हैं। ज्यों-ज्यों रेडियो आइसोटोप अधिक मात्रा में सुलभ होते जायेंगे, त्यों-त्यों वे सस्ते भी होते जायेंगे और उस दशा में उनका और भी अधिक कामों के लिये अधिकाधिक उपयोग होने लगेगा। हम आशा कर सकते हैं कि आगामी वर्षों में प्रगति गत वर्षों की

अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से होगी। परमाणु में से अधिक अच्छी सुरक्षित दवाएँ, रोगों की चिकित्सा की नयी पद्धतियाँ, अधिक अच्छे और अधिक पोषक खाद्य पदार्थ, नये प्लास्टिक तथा सुखदतर जीवन के लिए और भी सैकड़ों वस्तुएँ तैयार की जा सकेंगी।

सबसे पहले मनुष्य ने आग का उपयोग करना सीखा, उसके बाद भाप की शक्ति का और उसके बाद बिजली की शक्ति का। आज वह एक नये युग के द्वार पर खड़ा है—परमाणु युग के द्वार पर। भविष्य में आने वाली वस्तुओं की वह केवल कल्पना ही कर सकता है!